जैन पाठावली

पुस्तक 3

श्रेणी 3

श्री ग्रेटर बोम्बे वर्धमान स्थानकवासी जैन महासंघ संचालित
दर्शन ज्ञान चारित्र
मातुश्री मणिबेन मणशी भीमशी छाडवा
धार्मिक शिक्षण बोर्ड

प्रकाशक

श्री ग्रेटर बोम्बे वर्धमान स्थानकवासी जैन महासंघ

संचालित

मातुश्री मणिबेन मणशी भीमशी छाडवा - धार्मिक शिक्षण बोर्ड

प्रकाशन दिन

वीर संवत	:	2550
विक्रम संवत	:	2080
ई.स.	:	February 2024

प्रथम संस्करण

प्रत	:	1500
ज्ञानार्थे	:	50 ₹

प्राप्ति स्थान

श्री ग्रेटर बोम्बे वर्धमान स्थानकवासी जैन महासंघ

:संचालित:

मातुश्री मणिबेन मणसी भीमशी छाडवा धार्मिक शिक्षण बोर्ड

जयंत आर्केड राजावाडी सिग्नल, वामन हरि पेठे के उपर

कार्यालय नं 202, घाटकोपर - (पूर्व), मंबई - 400077

कार्यालय : 9702277914

छायाबेन : 9029933775

चिरागभाई : 9820596646

श्रुत स्तंभ

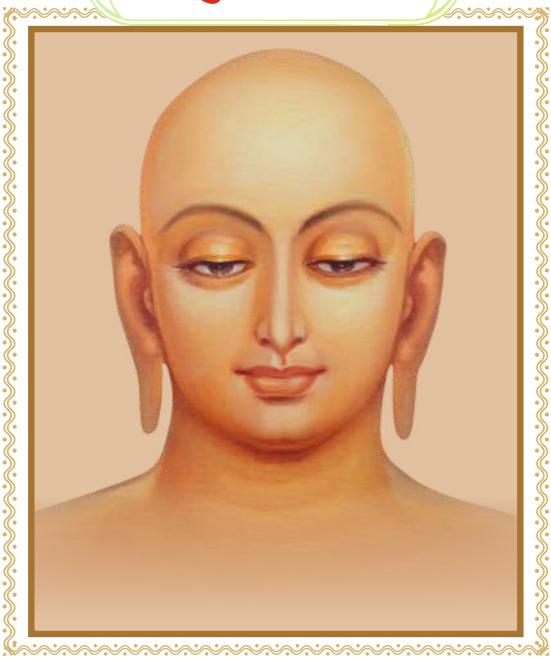

गुरु भक्त परिवार

दुबई

ज्ञानदान योजना में सहभागी बनकर,
ज्ञानप्रचार के कार्य में सहकार देनेवाले,
स्वयं के ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम करने वाले,
लोकोत्तर पुण्य का बंध करनेवाले परिवार का
धार्मिक शिक्षण बोर्ड बहुत-बहुत आभारी है।
आपके शुभ भावो की अनुमोदना करते हैं।

||नाणस्स सव्वस्स पगासणाऐ||

श्री ग्रेटर बोम्बे वर्धमान स्थानकवासी जैन महासंघ

Shree Greater Bombay Vardhman Sthanakvasi Jain Mahasangh

: संचालित :

मातुश्री मणिबेन मणशी भीमशी छाडवा - धार्मिक शिक्षण बोर्ड

Matushree Maniben Manshi Bhimshi Chhadva Dharmik Shikshan Board,

Jayant Arcade, office No 202, 2nd floor, M.G. Road,
Rajawadi Signal, Ghatkopar (E), Mumbai- 400077

ज्ञानदान महादान

ज्ञान योजना

₹1,00,000/- श्रुतस्तंभ

₹51,000/- श्रुताधार	₹5,000/- श्रुतसहयोगी
₹25,000/- श्रुतप्रभावक	₹2500/- श्रुतसहायक
₹11,000/- श्रुतप्रेरक	₹1000/- श्रुतअनुमोदक

देश-विदेश के हजारों परीक्षार्थी श्रृंखला 1 से 24 की परीक्षा देकर अपना ज्ञान बढा रहे है। धार्मिक शिक्षण बोर्ड को सध्धर बनाने हेतु आप ज्ञानदान योजना के भागीदार बनिए और अन्यों को भी प्रेरित जरूर कीजिए.

धार्मिक शिक्षण बोर्ड को दान के लिए बैंकिंग विवरण

A/c Name : Shree Greater Bombay Vardhaman Sthanakvasi Jain Mahasangh
Bank Name : DENA BANK, Zaveri Bazar, Mumbai - 400 002.
Code : RTGS/BKDNO450008
A/c. No. : 021010025716 Phone : +91 (22) 22018629

चेक, ड्राफ्ट श्री ग्रेटर बॉम्बे वर्धमान स्था. जैन महासंघ के नाम से लिखे।

अतीत के पन्नों से

पूरे विश्व में आज कल प्रलोभन बढते जा रहे हैं। आज का मनुष्य सूर्योदय से सूर्यास्त तक नहीं, बल्कि सूर्योदय से मध्यरात्रि तक यंत्रवत् दौड़ रहा हैं। समय और विश्राम जैसे शब्दों ने उनके जीवन की शब्दावली को न जाने कबसे छोड दीया है। तब सवाल उठता है कि ये सभी प्रयास किसके लिए हैं ?

तो जवाब है कि सुख, समृद्धि, अखूट धन के लिए।

लेकिन क्या इतनी भागा-दौड़ी करने के बाद भी यह सब मिलता है ?

यंत्रयुग में शायद समृद्धि और धन मिल जाता है लेकिन जीवन यंत्रीकृत बन जाता है। सुख- शांति के पीछे पडने के बावजूद, सुख और शांति हमसे दूर ही रह जाती है। आज हर इंसान किसी न किसी तरह की तकलीफ से घिरा हुआ है। यदि इन सभी कष्टों से मुक्त होना चाहते हैं, तो केवल सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान का धर्म और धर्म की सच्ची समझ ही मदद कर सकती हैं।

इस स्थिति को जानकर, समझकर बुद्धिमान, दूरदर्शी बडों के मार्गदर्शन के अनुसार मातृश्री मणिबेन मणशी भीमशी छाडवा धार्मिक शिक्षण बोर्ड की स्थापना तारीख 30-07-1961 को बृहद मुंबई स्थानकवासी जैन महासंघ के नेतृत्व में की गई थी।

धार्मिक शिक्षण बोर्ड ने शुरु में स्थानकवासी जैन धर्म के 32 आगम से प्रेरित होकर, आगम सागर से मंथन करके, सरल भाषा में जैनों के, जैन धर्म आधारित ज्ञान को विकसित करने के लिए कक्षा 1 से 7 के लिए पाठयपुस्तकें तैयार की, ताकि इसे सरल भाषा में पढाया जा सके। इस पाठयक्रम को तैयार करने में पूज्य संत-सतीजीओं का अविस्मरणीय सहयोग प्राप्त हुआ।

धीरे-धीरे संघ के दूरदर्शी लोगों ने पाठयक्रम को विकसित किया। जिसके कारण आज बाल पाठावली एवं एक से चौबीस श्रृंखला के पाठयक्रम तैयार हो गए हैं। आवश्यकता पडने पर नए संस्करण में परिवर्तन भी किए गए हैं। इसलिए अब हम कुछ बदलावों के साथ नये स्वरूप में इस पुस्तक को पुनःप्रकाशित कर रहे हैं। इसके पीछे

उद्देश्य यह है कि सभी युवा, बच्चे और वृध्ध इसमें शामिल हो सकें और अधिक से अधिक संख्या में लोगों को परमात्मा के धर्म से अवगत कराया जा सके।

समय के अनुसार क्रमिक विकास करते-करते आज संस्कार सिंचन से युक्त भावी पीढी के निर्माण के लिए धार्मिक शिक्षण बोर्ड कार्य कर रहा है।

पाठयक्रम तैयार करने में अनेक कल्याणकारी गुरु भगवंतों, गुरुणी भगवंतों का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। उस मार्गदर्शन के अनुसार अभ्यासु श्रावक श्राविकाओं ने अपना योगदान दिया हैं। हम उन सभी का अभिवादन करते हैं।

इस पाठयक्रम के कारण अब तक लाखों लोग परीक्षा के माध्यम से जैन धर्म के संस्कार को प्राप्त कर चुके हैं और भविष्य में भी अधिक से अधिक लोग इस पाठयक्रम से जुड़कर, संस्कार प्राप्त करके अपना भविष्य उज्जवल बनाए यही शुभ भावना और शुभकामनाएँ।

धार्मिक शिक्षण बोर्ड की गतिविधियॉ

1. जैन धर्म के ज्ञान के प्रसार के लिए जैनशाला और महिला मंडल की धार्मिक परीक्षाओं का आयोजन करने वाली संस्था।
2. परीक्षा के लिए आवश्यक पुस्तकों का प्रकाशन।
3. शिक्षकों और छात्रों का सम्मेलन आयोजित करके उन्हें पाठयक्रम की समझ देना।
4. श्रृंखला परीक्षाओं की पुरस्कार सभा आयोजित करना।
5. ज्ञानदाता शिक्षकों का अभिवादन।
6. बाल पाठावली एवं एक से चौबीस श्रृंखला तक विस्तारित पाठयक्रम उपलब्ध और नई श्रृंखला का विकास।
7. जैन धर्म के गहन ज्ञान के साथ अनुभवी और कुशल ज्ञानदाता द्वारा धार्मिक और आध्यात्मिक शिविरों का आयोजन।
8. Technology के माध्यम से ओनलाइन, ओरल और लिखित परीक्षा हर साल जनवरी और जुलाई में आयोजित की जाती है।
9. वैश्विक परीक्षा का आयोजन, ओनलाइन प्रमाण पत्र और पुरस्कार वितरण।

इस पुस्तक में छद्मस्थ अवस्था के कारण जिनाज्ञा के खिलाफ कुछ भी लिखा गया हो, तो मिच्छामि दुक्कडम्।

अनुक्रमणिका

पृष्ठ क्रमांक

1. सूत्र खंड- 40 अंक

1. संपूर्ण सामायिक सूत्र - श्रृंखला 1 और 2 का पुनरावर्तन ____ 01
2. प्रतिक्रमण सूत्र 12 व्रतों तक कंठस्थ, अर्थ 1 से 3 पाठ और समझ 1 से 5 पाठ ____ 07

2. सामान्य समझ खंड - 20 अंक

1. गृहस्थ जीवन में जतना ____ 18
2. सफलता की कुंजी ____ 22
3. कंदमूल का स्वरूप ____ 25
4. लौकिक और लोकोत्तर पर्व ____ 26

3. तत्त्व और संस्कार खंड - 15 अंक

1. कर्म और कर्मबंध के कारण ____ 30
2. कर्म और पुनर्जन्म ____ 42
3. पुण्य और पाप का स्वरुप ____ 44
4. पांच ज्ञान के नाम और ज्ञानवृद्धि के उपाय ____ 46

4. धर्म और विज्ञान – 5 अंक ____ 48

5. कथा खंड – 10 अंक

1. विश्वभूति राजकुमार ____ 50
2. नेम राजुल ____ 53
3. जैसी द्रष्टि वैसी सृष्टि ____ 57

6. कविता खंड 10 अंक

1. रत्नाकर पच्चीसी 1-12 तक ____ 59
2. प्रतिक्रमण भावना ____ 62
3. वाणी का विवेक ____ 63

प्रतिक्रमण:

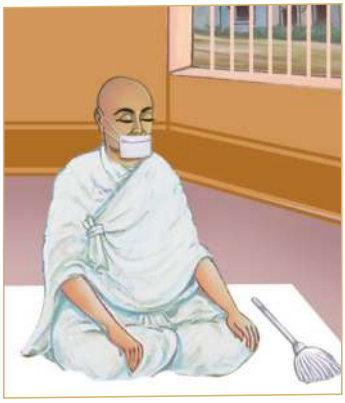

प्रतिक्रमण जैन परंपरा का एक पारिभाषिक शब्द हैं। इसका अर्थ हैं, पाप से पीछे मुड जाना। व्यक्ति अपनी सीमाओं का अतिक्रमण या उल्लंघन करके पापपूर्ण कार्य करता हैं। जैसे ही आत्मा स्वयं के प्रति जागरूक होती हैं, वह अतिक्रमण से हट जाती हैं, शांति की स्थिति में आ जाती हैं और शांति-समाधि का अनुभव करती हैं। इस साधना को **प्रतिक्रमण** कहते हैं।

प्रतिक्रमण की परिभाषा इस प्रकार हैं।

1. प्रमादवश अशुभ योग में लगी आत्मा को शुभ योग में स्थिर करना प्रतिक्रमण हैं।
2. पाप कर्मों के सेवन से मुक्त होकर, उन पापों का प्रायश्चित करना प्रतिक्रमण हैं।
3. अहिंसा आदि व्रतपालन में लगे दोषों की पश्चाताप के माध्यम से शुद्धि करना प्रतिक्रमण हैं।
4. दोषसेवन से अशुद्ध आत्मा को शुद्ध करने के लिए दोष सेवन से पीछे लौटना प्रतिक्रमण हैं।
5. प्रतिक्रमण का अर्थ हैं, स्वयं से दोषों का दर्शन। जैसे ही आत्मा अपने दोषों को देखती हैं, वह उनसे पीछे मुड़ जाती हैं और आत्म-शुद्धि की ओर कदम उठाती हैं, यही प्रतिक्रमण की साधना हैं।

प्रतिक्रमण का विषय :-

दोष सेवन चार प्रकार से होता हैं, इसलिए उसका विषय चार प्रकार से हैं।

1. हिंसा, असत्य, चोरी आदि न करने योग्य प्रवृत्तियों का सेवन किया हो।
2. अहिंसा, क्षमा, तप, जप आदि करने योग्य प्रवृत्तियों की आराधना न की हो।
3. तीर्थंकरो के वचनों में अश्रद्धा के भाव किए हो।
4. जिनवाणी से विपरीत प्ररूपणा कि हो।

इन चारों विषयों का शुद्ध भाव से प्रतिक्रमण करता हुआ साधक श्रद्धा, प्ररूपणा और स्पर्शना रूप आराधना के तीनों मार्ग की शुद्धि करता हैं। अश्रद्धा के प्रतिक्रमण से श्रद्धा की शुद्धि होती हैं, विपरीत प्ररूपणा के प्रतिक्रमण से प्ररूपणा की शुद्धि होती हैं, और न करने योग्य के सेवन और करने योग्य के असेवन के प्रतिक्रमण से स्पर्शना की शुद्धि होती हैं।

संक्षेप में, श्रद्धा, प्ररूपणा और स्पर्शना की यथार्थता से साधक की साधना गतिशील हो जाती हैं।

प्रतिक्रमण के महत्व को स्वीकार करते हुए, भगवान ने इसे चतुर्विध श्री संघ के लिए उभयकाल की एक आवश्यक क्रिया के रूप में स्थान दिया हैं।

प्रतिक्रमण के अधिकारी :-

जिन लोगों में पाप से पीछे मुड़कर सही मार्ग पर आने की तीव्र इच्छा होती हैं, वे प्रतिक्रमण के अधिकारी होते हैं। जो पाप से नहीं डरता, उसे प्रायश्चित करने के भाव प्रगट नहीं होते। इसलिए उसने किया हुआ प्रतिक्रमण पूरी तरह से सफल नहीं होता हैं।

प्रतिक्रमण के प्रकार :-

कारण की अपेक्षा से प्रतिक्रमण पांच प्रकार के हैं।

मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग, ये पांच पापों के कारण हैं। पाप से मुक्त होने के लिए उसके कारणों से पीछे मुडना पड़ता हैं। इस अपेक्षा से प्रतिक्रमण पाँच प्रकार के हैं।

1. **मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण :-** चतुर्थ गुणस्थान में सम्यक् दर्शनकी प्राप्ति होने पर मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण होता हैं।

2. **अव्रत का प्रतिक्रमण :-** अव्रत का प्रतिक्रमण पंचम या छट्ठे गुणस्थान में श्रावक या साधु के व्रत धारण करने से होता हैं।
3. **प्रमाद का प्रतिक्रमण :-** सातवें गुणस्थान में प्रमाद का परित्याग होने पर प्रमाद का प्रतिक्रमण होता हैं।
4. **कषाय का प्रतिक्रमण :-** कषाय का प्रतिक्रमण तब होता हैं, जब ग्यारहवें या बारहवें गुणस्थान में वीतरागता का अनुभव होता हैं।
5. **योग का प्रतिक्रमण :-** चौदहवें गुणस्थान में अयोगी अवस्था की स्थिति प्राप्त हो जाती हैं तो योग का प्रतिक्रमण होता हैं।

उपरोक्त सम्यक् दर्शन आदि पाँचों अवस्था के प्रकट होने से पहले प्रतिक्रमण करने वाले साधक की श्रद्धा और उसकी प्रायश्चित की भावना प्रबल हो जाती हैं, इसलिए उभयकाल प्रतिक्रमण करना बहुत आवश्यक हैं।

इन पाँचों प्रकार के प्रतिक्रमण की पूर्णता से जीव सिद्ध दशा को प्राप्त करता हैं।

काल की अपेक्षा से प्रतिक्रमण के पांच प्रकार :-

1. **देवसी :-** प्रतिदिन सूर्यास्त के बाद दो घडी में दिन के पापों की आलोचना करना।
2. **रायसी :-** प्रतिदिन सूर्योदय से पहले दो घडी में रात्रि के पापों की आलेचना करना।
3. **पक्खी :-** पन्द्रह दिन के पापों की आलोचना। महीने में दो बार पूनम और अमास के दिन शाम को करना।
4. **चौमासी :-** चार मास की समाप्ति पर अर्थात् कार्तिकी पूर्णिमा, फागण पूर्णिमा और आषाढ़ पूर्णिमा को शाम के समय चार मास के पापों की आलोचना करना।
5. **सांवत्सरीक :-** प्रतिवर्ष आषाढ़ सुद पूर्णिमा से पचासवा दिन भादरवा सुद की पंचमी तिथि को पूरे वर्ष के पापों की आलोचना करना।

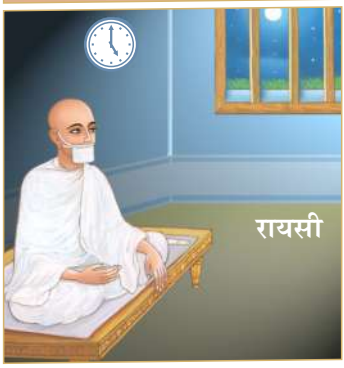

भले ही हर दिन घर की सफाई की जाती हो, लेकिन पर्व के दिन विशेष रूप से साफ-सफाई करते हैं, वैसे ही रोज प्रतिक्रमण करने के बावजूद पक्खी आदि पर्व के दिन विशेष रूप से प्रतिक्रमण किया जाता हैं।

प्रतिक्रमण का समय :-

देवसी प्रतिक्रमण के लिए सूर्यास्त के बाद की दो घडी का समय हैं। राई प्रतिक्रमण के लिए सूर्यास्त से दो घडी पहले का समय हैं। पक्खी, चौमासी और संवत्सरी प्रतिक्रमण केवल देवसी प्रतिक्रमण के समय किया जाता हैं।

इस प्रकार साधक परमात्मा की आज्ञा के अनुसार शुद्ध भाव से प्रतिक्रमण करके स्वयं की आत्मविशुद्धि करता हैं। यही साधना का मार्ग हैं।

प्रतिक्रमण के आवश्यक :-

प्रतिक्रमण की विधि छह आवश्यक से पूरी होती हैं।

1. सामायिक
2. चौविसंथो, चतुर्विंशतिस्तव
3. वंदना
4. प्रतिक्रमण
5. कायोत्सर्ग
6. पच्चक्खान

हर आवश्यक के प्रारंभ मे विनय पुर्वक आज्ञा लेनी चाहीये। आज्ञा लेते समय यदी पु. संत-सतिजी बिराजमान हो तो उनकी, यदि न हो तो इशान कोने की ओर मूख रखकर प्रभु सिमंधर स्वामीकी आज्ञा ले।

पहला आवश्यक :- सामायिक -

प्रतिक्रमण का पहला पाठ आज्ञा सूत्र या प्रतिक्रमण करने के लिए संकल्प सूत्र हैं। उस पाठ को बोलने के बाद पहले सामायिक आवश्यक का प्रारंभ होता हैं। इस में करेमि भंते, संक्षिप्त प्रतिक्रमण सूत्र, तस्स उत्तरी का पाठ और 99 अतिचार का कायोत्सर्ग शामिल हैं।

दूसरा आवश्यक :- चौविसंथो -

"नमो अरिहंताणं " बोल के कायोत्सर्ग पूरा

करने के बाद, तिक्खुत्तो पाठ से तीन वंदन करके, दूसरे आवश्यक की आज्ञा लेकर लोग्गस्स के पाठ के माध्यम से चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति करें।

तीसरा आवश्यक :- वंदना -

तिक्खुत्तो के पाठ से तीन वंदना करें। तीसरे आवश्यक की आज्ञा लेकर उकडु आसन में बैठें और बारह आवर्तन सहित इच्छामि खमासमणो के उत्कृष्ट वंदना के पाठ को दो बार दोहराएँ।

चौथा आवश्यक :- प्रतिक्रमण -

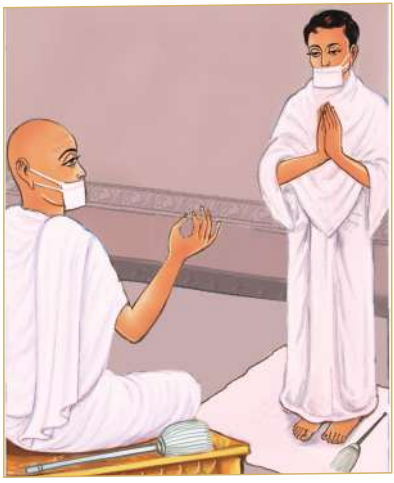

तिक्खुत्तो से तीन वंदना करने के बाद चौथे आवश्यक की आज्ञा लेकर, खड़े होकर या बैठे बैठे दोनों हाथों को जोडकर प्रतिक्रमण की आराधना करें। जिस में चौथा पाठ दिन संबंधित ज्ञान, दर्शन... से शुरू होकर, बारह व्रत, संथारा, 18 पाप, 25 मिथ्यात्व, 14 संमूर्च्छिम, मांगलिक, पाँच श्रमण सूत्र और छह खामणा और फिर से दो बार उत्कृष्ट वंदना का पाठ शामिल हैं।

पाँचवाँ आवश्यक :- कायोत्सर्ग -

तिक्खुत्तो के पाठ से तीन वंदन करके पाँचवें आवश्यक की आज्ञा लेकर, देवसिय प्रायश्चित... नवकार मंत्र, करेमि भंते, इच्छामि ठामि, तस्स उत्तरी का पाठ बोलें। उसके बाद चार लोग्गस्स या धर्मध्यान का कायोत्सर्ग करना। कायोत्सर्ग पूरा करने के बाद, खुले तौर

पर लोग्गस्स और दो बार उत्कृष्ट वंदना का पाठ बोलें।

छठा आवश्यक :- पच्चक्खान -

तिक्खुत्तो के पाठ से तीन वंदन करके छट्ठे आवश्यक की आज्ञा लेकर यदि संत विराजमान हो तो उनसे चौविहार का पच्चक्खान लें। यदि संतों की प्रत्यक्ष उपस्थिति नहीं हैं, तो किसी बुजुर्ग के पास या कोई नहीं हैं, तो भाव से गुरु की साक्षी में पच्चक्खान ग्रहण करें।

अंत में तीन नमोत्थुणं के माध्यम से सिद्ध परमात्मा, अरिहंत भगवान और गुरु भगवंतो की स्तुति करें एवं तीन बार नमकार महामंत्र बोलें।

इस प्रकार छह आवश्यक के माध्यम से प्रतिक्रमण की विधि समाप्त होती हैं।

अपेक्षित प्रश्नो

1. प्रतिक्रमण कौन कर सकता है ?
2. प्रतिक्रमण के द्वारा आराधना के कौन से मार्ग की शुद्धि होती है ?
3. तिसरे आवश्यक में कौन सा आसन होता है
4. कषाय का प्रतिक्रमण कौन से गुणस्थान में होता है ?
5. प्रतिक्रमण याने क्या ?

|| पडिक्कमणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? ||

हे भगवान ! प्रतिक्रमण करने से जीव को क्या लाभ होता है ?

प्रतिक्रमण करने से जीव स्वयं द्वारा स्वीकार किये गए व्रतो में लगे हुए दोषों से निवृत्त होता है। व्रत के दोषों से निवृत्त जीव आश्रवों का निरोध करता है। वह सबल दोषों से रहित शुद्ध संयमवान बनकर 5 समिति एवं 3 गुप्ति रुप अष्ट प्रवचन माता कि आराधना में सतत सावधान रहता है। संयम योगों में तल्लिन हो जाता है एवं इंद्रियविजेता बन, समाधि युक्त होकर संयम मार्ग में विचरण करता है।

प्रतिक्रमण पाठ – 1 आज्ञा सूत्रः समझ

साधक के व्रत, तपस्या, जप आदि साधना उसकी इच्छा या स्वच्छंद बुद्धि से सफल नहीं होती हैं। हर साधना तभी सफल होती हैं, जब वह गुरु की आज्ञा के अनुसार की जाती हैं।

प्रतिक्रमण आत्म-शुद्धि की एक महत्वपूर्ण साधना हैं, इसलिए साधक गुरु की आज्ञा लेकर प्रतिक्रमण शुरू करता हैं। साधक गुरु के सामने अपने मन का भाव रखते हुए बिनती करता हैं कि – "हे गुरुदेव! यदि आपकी अनुमति हो तो मैं प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ। " गुरु से सहमति प्राप्त करने के बाद, वह प्रतिक्रमण की क्रिया शुरू करता हैं।

प्रतिक्रमण किसका?

श्रावक या साधु मोक्ष के मार्ग पर चलने वाले तीर्थयात्री हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की उपासना, यही मोक्षमार्ग की साधना हैं। उस साधना को करते करते दिन के दौरान ज्ञान, दर्शन, चरित्ताचरिते- (श्रावक के व्रत रूप, देशविरती चारित्र) और तप से संबंधित दोषों का सेवन हुआ हो, तो उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए।

इसलिए साधक गुरु से विनंती करता हैं कि, "हे गुरुदेव ! आज अगर मैंने ज्ञान, दर्शन, चारित्र या तपस्या से संबंधित अतिचारों का सेवन किया हैं, तो मैं उनकी आलोचना करता हूँ और उनसे शुद्ध होने के लिए प्रतिक्रमण करता हूँ।"

पाप करने के चार चरण होते हैं। अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार।

अतिक्रम :- पाप सेवन का या व्रत भंग का विचार करना।
जैसे की अगर कंदमूल ना खाने के पच्चक्खान हैं तो भी कंदमूल खाने के बारे में सोचे।

व्यतिक्रम :- इसके लिए उचित सामग्री एकत्रित करना। बाजार से कंदमूल लाना।

अतिचार :- कंदमूल खाने की पूरी तैयारी कर लेना। जैसे आलू की सब्जी बनाना।

अनाचार :- व्रत तोड़ना अर्थात् कंदमूल खाना।

यदि अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार तक के दोष का सेवन हो गया हो, तो प्रतिक्रमण द्वारा उस दोष सेवन से पीछे मुड सकते हैं। लेकिन जब अनाचार अर्थात् व्रत

को तोड़ा गया हो तो उसकी शुद्धि केवल प्रतिक्रमण से नहीं होती। अनाचार की शुद्धि के लिए गुरु समक्ष बीनती करके, पाप का स्वीकार करके, प्रायश्चित लेना होता हैं।

संक्षेप में, प्रतिक्रमण केवल अतिचार तक के पापों को शुद्ध करता हैं। इसलिए पाठ में "अतिचार चिंतवनार्थं"... शब्द का उपयोग हैं। "हे गुरुदेव! मैं अतिचारों पर चिंतन करने हेतु कायोत्सर्ग में स्थिर होता हूँ।"

इस प्रकार पहले पाठ में प्रतिक्रमण की आज्ञा विधि और संक्षेप में किन दोषों का प्रतिक्रमण करना हैं, यह विवरण हैं।

अपेक्षीत प्रश्नो

1. प्रतिक्रमण के प्रथम पाठ का नाम क्या है ?
2. अनाचार का प्रतिक्रमण क्यों नहिं हो सकता ?
3. प्रतिक्रमण किसका किया जाता है ?
4. अतिक्रम याने क्या ?
5. साधना सफल कब होती है ?

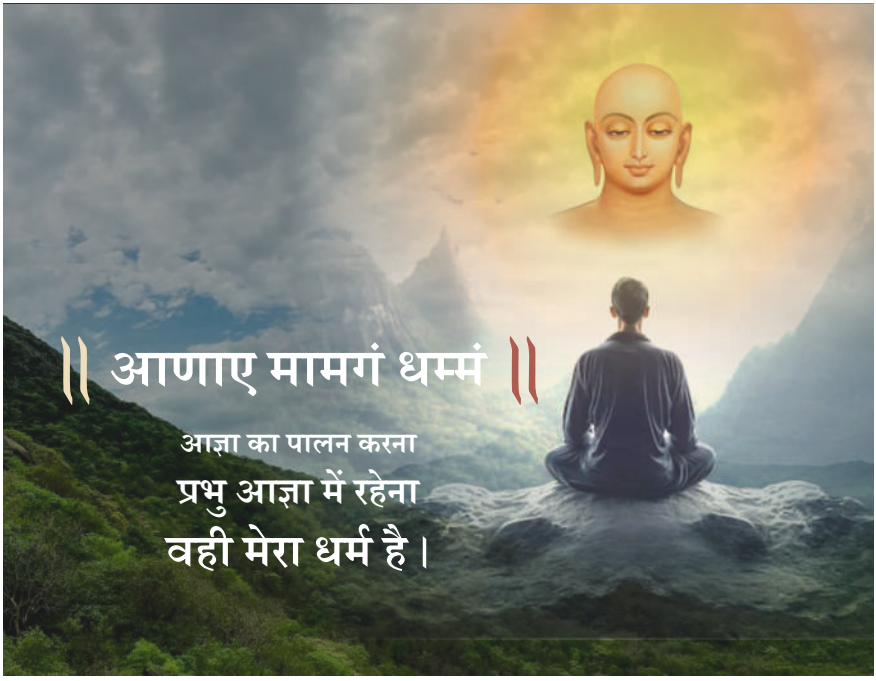

पाठ – 2 संक्षिप्त प्रतिक्रमण सूत्रः समझ

इस पाठ का नाम हैं संक्षिप्त प्रतिक्रमण सूत्र। यह पूरे प्रतिक्रमण का सार हैं या पूर्ण प्रतिक्रमण की योजना रूप हैं।

जैसे एक व्यक्ति जब एक घर बनाता हैं, तब वह पहले घर की योजना बनाता हैं। योजना पूरी इमारत की रूपरेखा तैयार करती हैं। योजना के अनुसार धीरे धीरे इमारत बनाने की शुरूआत की जाती हैं। उसी प्रकार इस पाठ में प्रतिक्रमण की पूर्णतः योजना हैं।

मनुष्य के पास पाप करने के तीन साधन मन, वचन और शरीर हैं।

यदि इन तीनों साधनों का सही तरीके से उपयोग किया जाए तो साधना के साधन बन जाते हैं और यदि इनका उपयोग गलत तरीके से किया जाए तो कर्मबंधन के साधन बन जाते हैं। साधक को उन तीनों साधनों की गतिविधियों के प्रति लगातार सतर्क रहना पड़ता हैं। यदि कोई अतिचार मन, वचन या शरीर से हो गया हैं, तो उसका चिंतन करना होगा।

- यदि मन ने दुर्ध्यान किया हैं या बुरा सोचा हैं,
- शब्द से उत्सूत्र प्ररूपणा की हैं,
- शरीर से कोई गतिविधि की हैं जिसे श्रावक कभी ना सोचता या करता।
- श्रावकधर्म के पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार के देशविरती चारित्र का खंडन किया हो या उसकी विराधना की हो "तो मैं उसका प्रतिक्रमण करता हूँ।"

इस प्रकार, इस पाठ के माध्यम से प्रतिक्रमण की रूपरेखा तैयार होने के बाद, चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक में ज्ञानादि के अतिचारों का एक एक पाठ द्वारा क्रमशः विस्तृत विवरण हैं।

विशिष्ट शब्दों के अर्थ :-

उस्सुत्तो-उत्सूत्रः

आगम के कथन के विपरीत कहना। इस पाप का सेवन मिथ्यात्वजनक हैं, यह अनंत संसार भ्रमण योग्य कर्मबंध की ओर ले जाता हैं। तीसरे मरीचि के भव में भगवान

महावीर की आत्मा ने उत्सूत्र प्ररूपणा कि थी। शिष्य बनने आए कपिल नाम के एक युवक को "यहाँ भी धर्म है और वहाँ भी धर्म हैं" इस प्रकार कह कर एक क्रोडाक्रोडी सागरोपम के संसार परिभ्रमण को बढ़ाया, 'यहाँ भी अर्थात् त्रिदंडीपन में भी धर्म हैं और वहाँ भी अर्थात् प्रभु आदिनाथ तथाकथित संयम में भी धर्म हैं।' यह मिथ्याकथन उनकी उत्सूत्र प्ररूपणा थी।

उम्मग्गो - उन्मार्ग -

परंपरा के विपरीत कार्य करना, यह उन्मार्गगमन हैं। जैसे मरीचि ने संन्यास में त्रिदंडी का वेश धारण किया, यह उन्मार्ग गमन हैं। यह दोष चारित्र संबंधी हैं।

अकप्पो - अकल्पनीय -

श्रावक या साधु की जो कल्प मर्यादा हैं, उसका उल्लंघन करना। जैसे की - श्रावक के लिए न्याय संपन्न कारोबार करने का बयान हैं। यदि कोई श्रावक व्यापार में बेईमानी या अप्रमाणिकता करता हैं तो यह श्रावक की मर्यादा का उल्लंघन हैं। यह अकल्पनीय दोष का सेवन हैं।

अकरणिज्जो - अकरणिय-

ना करने योग्य प्रवृत्ति का आचरण करना जैसे कि पन्द्रह कर्मादान महाआरंभजन्य, महाहिंसक व्यापार हैं। श्रावक के लिए यह उचित नहीं हैं। फिर भी, अगर कोई इसका सेवन करता हैं, तो यह ना करने योग्य दोष का सेवन हैं।

सुए-श्रुतधर्म -

श्रुत-श्रुत ज्ञान। तीर्थंकर परमात्मा के उपदेश से प्राप्त हुआ आगमज्ञान श्रुत हैं। आगम साहित्य की आस्था और सत्य की प्ररूपणा करना ही श्रुतधर्म हैं। तत् संबंधी कोई दोषसेवन हुआ हो तो उसका प्रतिक्रमण करना हैं।

सामाइए-

सामायिक अर्थात् चारित्र रूप धर्म। श्रावक के बारह व्रत रूप चारित्र धर्म की उपासना सच्चे ढंग से न हुई हो, तो उसकी आलोचना करनी हैं।

जं खंडियं -

खंडन किया हो - किसी एक देश द्वारा कुछ मात्रा में व्रत भंग किया जाता हैं तो उसे खंडन कहा जाता हैं।

जं विराहीयं -

विराधना की गई हैं। व्रत को कई हद तक तोड़ देना, उसे विराधना कहा जाता हैं। विराधना में यद्यपि व्रत अनेक प्रकार से टूट जाता हैं, फिर भी व्रत पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता। यदि व्रत पूर्ण रूप से टूट जाए तो वह दोष अनाचार की श्रेणी में आ जाता हैं और अनाचार कक्षा के दोषों की शुद्धि प्रतिक्रमण से नहीं होती, उसकी शुद्धि केवल गुरु के द्वारा दिए गए प्रायश्चित से ही होती हैं।

अपेक्षीत प्रश्नो

1. उस्सुत्तो याने क्या ?
2. खंडना एवं विराधना में क्या फर्क है ?
3. प्रतिक्रमण के दुसरे पाठ का विषय क्या है ?
4. उमग्गो एवं उस्सुत्तो में कौन सा दोष बडा है, क्यों ?
5. श्रुत धर्म याने क्या ?

पाठ - 3 द्वादशावर्त वंदन सूत्रः समझ

वंदना तीन प्रकार से होती हैं। जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट

1. संत-सतीजी मार्ग में मिलने पर दोनों हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर, "मत्थएणं वंदामि" शब्द बोलकर प्रणाम करना, उसे जघन्य वंदन कहते हैं।

2. पंचांग को झुकाकर 'तिक्खुत्तो' का पाठ बोलकर वंदन करना, यह मध्यम वंदना हैं।

3. द्वादश- बारह आवर्तन के साथ, उकडू आसन पर बैठकर, **"इच्छामि खमासमणो"** के पाठ से होती हैं, वह उत्कृष्ट वंदना हैं।

प्रतिक्रमण का तीसरा पाठ उत्कृष्ट वंदना का हैं।

स्पष्टता के लिए इस पाठ को चार भागों में विभाजित किया जा सकता हैं।

1. इच्छा का कथन :-

'इच्छामि खमासमणो... निसीहियाए...' ये शब्द इच्छा निवेदन रूप हैं।

सबसे पहले शिष्य अपनी वंदना करने की इच्छा का, भावना का गुरु के समक्ष निवेदन करता हैं। "हे क्षमाश्रमण गुरुदेव! मैं अपनी सभी पापकारी प्रवृत्तियों का निषेध करके अपनी पूरी क्षमता के अनुसार आपको वंदन करने की इच्छा रखता हूँ।"

2. आज्ञायाचना :-

"अणुजाणह में मि उग्गहं।"

"हे गुरुदेव! मुझे आपके अवग्रह में आने की आज्ञा प्रदान करें।" शिष्य इन शब्दों के माध्यम से आज्ञा की बिनंती करता हैं।

अवग्रह – जहाँ गुरुदेव विराजमान होते हैं, उसके चारों ओर साढ़े तीन हाथ के क्षेत्र को गुरु का अवग्रह क्षेत्र कहा जाता हैं। इस क्षेत्र में गुरु अपनी साधना स्वतंत्र रूप से करते हैं। उनकी साधना में विघ्न न पड़े उस द्रष्टि से अवग्रह क्षेत्र में बिना आज्ञा का प्रवेश करना वर्जित हैं। यदि कोई शिष्य गुरु के पास वंदन करने या पढ़ने के अनिवार्य कार्य के लिए जाना चाहता हैं, तो वह गुरु की आज्ञा लेकर ही जाता हैं।

3. सुखशाता की पृच्छा :-

'अहो कायं... जवणिज्जं' तक का सूत्र पठन गुरु से शारीरिक और संयम यात्रा की सुख-साता पूछने के लिए हैं। **'अहो, कायं, काय'** इन तीन शब्दों से तीन आवर्तन करके **संफासं** शब्द का उच्चारण करते हुए शिष्य गुरु के चरण का स्पर्श करता हैं।

'अप्पकिलंताणं' वगैरे शब्द कहकर गुरु से शाता पूछता हैं।

तत्पश्चात् **'जता भे, जवणिज्जं, च भे'** शब्दों से फिर तीन बार आवर्तन करके **'खामेमि खमासमणो...'** शब्द कहता हैं और गुरुचरण को छूकर संयम साधना से संबंधित सुखशाता पूछकर क्षमा याचना करता हैं।

4. क्षमायाचना :-

'खामेमि खमासमणो... वोसिरामि' तक का पाठ क्षमा याचना के लिए हैं। शिष्य द्वारा स्वयं के व्यवहार से, कषायों के आधिन होकर यदि 33 प्रकार की अशातानाओं में से किसी प्रकार का अविनय या अशातना हुई हो, तो शिष्य झुककर शुद्ध भाव से गुरु से क्षमा याचना करता हैं।

इस प्रकार एक बार सूत्र का पाठ करने में छह आवर्तन होते हैं। इसी प्रकार दूसरी बार उसी विधि से पाठ करें। सूत्र का दो बार पाठ करने और विधिवत् वंदन करने से द्वादश- बारह आवर्तन हो जाते हैं।

इस प्रकार उत्कृष्ट वंदना विशेष विधिपूर्वक अहोभाव के साथ की जाती हैं। इस प्रकार के विधिपूर्वक वंदन से शिष्य हृदय में गुरु के उपकार की अनुभूति प्रबल होती हैं। गुरु शिष्य की आत्मियता बढ़ाती हैं, जो शिष्य की साधना में अत्यंत उपयोगी हैं।

अपेक्षीत प्रश्नो

1. उत्कृष्ट वंदना से क्या लाभ होता है ?
2. अवग्रह याने क्या ?
3. एक बार की वंदना में कितने आवर्तन होते है ?
4. गुरुदेव को सुख साता पूछने के लिए कौन से शब्द है ?
5. अशातना के कितने प्रकार है ?

पाठ - 4 ज्ञान के अतिचार सूत्रः समझ

प्रतिक्रमण के चौथे पाठ से चौथा प्रतिक्रमण आवश्यक शुरू होता हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के अतिचार दोषों की निवृत्ति के लिए प्रतिक्रमण करना हैं।

इस पाठ में ज्ञान के 14 अतिचारों का वर्णन हैं।

ज्ञानाराधना :- ज्ञान की आराधना तीन तरह से की जा सकती हैं।

1. सुत्तागमे-

सूत्ररूप आगम - आगम के मूल पाठ की वाचना लेना-देना, उसका स्वाध्याय करना आदि।

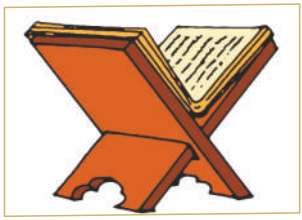

2. अत्थागमे-

अर्थरुप आगम - आगम के मूल पाठ के अर्थ को समझना, समझाना, उसको दोहराना आदि।

3. तदुभयागमे -

सूत्र और अर्थ दोनों को साथ पढ़ें। इस प्रकार वांचना लेना-देना, स्वाध्याय करना, उसकी अनुप्रेक्षा करना आदि...

इन तीन प्रकार से ज्ञान की आराधना करते समय कभी-कभी उच्चारण की अशुद्धि, चित्त की चंचलता, उपयोग की अस्थिरता, अविनय या ज्ञान ग्रहण की पात्रता के अभाव से भगवान की वाणी की अशातना हो जाती हैं।

उसी प्रकार भगवान के उपदेश रूप आगम ग्रंथ पवित्र धर्म ग्रंथ हैं, वे देवाधिष्ठित होते हैं। इसलिए शास्त्रों की अवहेलना न हो इसके लिए स्थान शुद्धि और काल शुद्धि भी आवश्यक हैं।

ज्ञान के 14 अतिचारों में से दो अतिचार स्थानशुद्धि से संबंधित हैं, दो अतिचार कालशुद्धि से संबंधित हैं, दो अतिचार पात्रता संबंधित हैं, बाकी के अतिचार उच्चारण, चित्तचंचलता, अविनय भाव आदि संबंधित हैं।

जिस प्रकार शत्रु से बचने के लिए शत्रु कौन हैं, कहाँ है आदि की जानकारी आवश्यक हैं, वैसे अतिचारों के स्वरूप को यथार्थ रूप से जानना आवश्यक हैं। इसे तभी छोड़ा जा सकता हैं, जब इसे सही मायने में जाना जाए। इसलिए सभी अतिचार केवल जानने के लिए हैं, आचरण करने योग्य नहीं।

अतिचार रूप दोष सेवन के त्याग से व्रत की शुद्धि होती हैं।

इस प्रकार यह पाठ ज्ञानाराधना की विधि और ज्ञान के अतिचारों की व्याख्या करके तीर्थंकरों की वाणी के मूल्य को प्रदर्शित करता हैं।

अपेक्षीत प्रश्नो

1. अतिचार क्यों जानने चाहिए ?

2. ज्ञानाभ्यास की पद्धति कौन सी है ?

3. ज्ञान के अतिचारों में काल संबंधी अतिचार कितने है ?

4. व्रत की शुद्धि कैसे होती है ?

5. स्वाध्याय में स्थान शुद्धि की क्या जरुरत है ?

स्थान शुद्धि

स्थान अशुद्धि

पाठ - 5 दर्शन के अतिचार सूत्रः समझ

इस पाठ में मोक्षमार्ग के अनिवार्य अंग के रूप में सम्यक् दर्शन की महत्ता, प्राप्त हुए सम्यक् दर्शन को बनाए रखने के साधक और बाधक तत्व एवं इसके पाँच अतिचारों का उल्लेख किया गया हैं।

सम्यक् दर्शन :- सुदेव, सद्गुरु और सद्धर्म की आस्था यही सम्यक् दर्शन हैं। अरिहंत और सिद्ध वीतरागी सर्वज्ञ पुरुष मेरे देव हैं। पंचमहाव्रतधारी निर्ग्रन्थ साधु-साध्वीजी मेरे गुरु हैं और केवली प्ररूपित अहिंसा, संयम और तप रूपी धर्म ही मेरा धर्म हैं। इन तीन तत्त्वों में द्रढ़ विश्वास समकित, सम्यक्त्व या सम्यक् दर्शन हैं।

सम्यक् दर्शन के पोषक तत्त्व :- एक बार जीव को श्रद्धा प्रकट हो जाने पर, प्रकट श्रद्धा को बनाए रखने के लिए साधक को निरंतर सतर्क रहना चाहिए। उसके लिए सूत्रकार ने दो पोषक तत्त्वों का उल्लेख किया हैं।

1. परमत्थ संथवो, 2. सुदिट्ठ परमत्थ सेवणा।

1. साधक को गुरु या परम अर्थ प्रकट करने वाले शास्त्रों का बार-बार परिचय करना चाहिए। इससे मिलने वाली प्रेरणा से उनकी श्रद्धा मजबूत होती हैं।

2. जिसने परमार्थ को अच्छी तरह जान लिया हैं और उसका अनुभव कर लिया हैं, ऐसे अनुभवी गुरु भगवंतों की सेवा, पर्युपासना करने से भी श्रद्धा द्रढ़ बनती हैं।

सम्यक् दर्शन के बाधक तत्त्व :- जिस प्रकार कुसंग बुद्धि को खराब कर देता हैं, उसी प्रकार बाधक तत्त्व सम्यक् दर्शन को अशुद्ध कर देते हैं। सूत्रकार ने ऐसे दो बाधक तत्वों का उल्लेख किया हैं।

1. वावन्न 2. कुदंसण वज्जणा

जो ज्ञान, दर्शन या चारित्र से भ्रष्ट हुए हो,

अर्थात् पतित हुए हो उनका एवं जो कुदेव, कुगुरु या कुधर्म को मानने वाले हो एसे मिथ्यावी का संग नहीं करना चाहिए।

जैसा संग, वैसा रंग। कुदर्शनी व्यक्तियों का संग श्रद्धा को चलित करता हैं। इसलिए साधक को अपनी श्रद्धा को बनाए रखने के लिए उसका त्याग करना चाहिए।

सम्यक् दर्शन के पाँच अतिचार हैं...

- श्रद्धा का फल कभी कभी प्रत्यक्ष नहीं होता, तब साधक को इस पर संदेह आदि हो सकता हैं।
- अन्यों के चमत्कार आदि देखकर वह उनकी ओर आकर्षित हो जाता हैं।
- स्वयं की साधना के फल के बारे में संदेह होता हैं।
- अन्य दार्शनिकों का परिचय करने का मन होता हैं।
- उनकी प्रशंसा हो जाती हैं।

उपरोक्त प्रवृतियाँ धीरे धीरे श्रद्धा को खंडित करती हैं, इसलिए साधक को इस अतिचार रूप प्रकृतियों का पूर्णत: त्याग करना चाहिए।

इस प्रकार यह पाठ साधक की साधना की नींव को मजबूत करता हैं।

अपेक्षीत प्रश्नो

1. सम्यक दर्शन याने क्या ?
2. सम्यक दर्शन को टिका कर रखने के लिए क्या करना चाहिए ?
3. वावन्न याने क्या ?
4. स्वर्ग या नरक के विषेय में शंका करने से कौन सा अतिचार लगता है ?
5. कुदर्शनी का संग क्यों नहीं करना चाहिए ?

एवमेयं भंते, तहमेयं भंते, अवितहमेयं भंते	हे भंते ! आपने जो कहा है, वह सत्य है। मुझे यथातथ्य स्पर्श हो रहा है। इस निग्रंथ वाणी पे मैं पूर्ण श्रद्धा और विश्वास करता हुं।

गृहस्थ जीवन में जतना

जतना यानी क्या ?

1. जतना का अर्थ हैं, विवेक। पाप न हो, उसका विवेक।
2. जतना का अर्थ हैं जीवदया का लक्ष्य।
3. जतना का अर्थ हैं जीवों के प्रति दया या करुणा की भावना।
4. जतना याने पापमय संसार में रहने वाले गृहस्थों के लिए पाप से बचने का उत्तम उपाय।
5. जतना याने पाप प्रवत्तियों के बीच रहते हुए पाप से मुक्त रहने की सिख।

गृहस्थ को अपना प्रत्येक कार्य सोच समझकर और विवेकपूर्वक करना चाहिए, यही उसकी महत्वपूर्ण साधना हैं। वह हर पल पाप के बारे में सोचते हुए आगे बढ़ता हैं। पापभीरुता का डर यह श्रावक का एक गुण हैं। श्रावक पाप करने से डरता हैं।

पाप करना पडे तो रोते हुए मन से करता हैं और यदि पाप हो जाता हैं तो उसका पश्चाताप करता हैं।

Make a List – श्रावक अपने दैनिक कार्यों के बारे में सोचे कि हम सुबह से शाम तक क्या क्या काम करते हैं, कैसे करते हैं, उसमें कैसे और किस तरह से किन जीवों को कष्ट देते हैं? उनकी एक सूची बनाएं, इस प्रकार खुद आत्म-निरिक्षण करें और इस बारे में सचेत और सतर्क हो जाए की, मैं उसमें से, उन पापों में से किस किस पाप से बच सकता हूँ।

उदा. – नहाने (स्नान) की क्रिया

- सुबह जब हम नहाएंगे तो पानी नाली में चला जाएगा, कितने छोटे जीव नाली में होंगे, उनकी आँखों में साबुन चला जाए तो उन्हें कितनी परेशानी होगी? उनको कितना दर्द होगा?
- स्नान करके पश्चाताप होता हैं, मैं संसार में हूँ तो मुझे कितने पाप करने पडते हैं।
- अब मैं कम से कम जीव हिंसा हो, इस तरह मेरे कार्य करुँगा।

- मैं अपने द्वारा उपयोग किए जाने वाले पानी की मात्रा से कम से कम एक टंबलर कम पानी का उपयोग करुँगा।
- हफ्ते में दो-तीन दिन साबुन का त्याग करुँगा।
- हफ्ते में एक दिन स्नान त्याग करुँगा।
- भगवान ने कहा हैं कि सभी जीव मेरे समान हैं। मेरे मित्र हैं।
- मैं जीवमात्र का, मेरे मित्रों का बहुत ध्यान रखूंगा। बहुत प्यार से उनका ख्याल रखूंगा।

इस प्रकार हमें अपने दैनिक जीवन में प्रत्येक क्रिया को सावधानी पूर्वक – जतना पूर्वक करनी चाहिए।

जतना (सुरक्षा) के उपकरण:

- **गरना:** पानी छानने का कपड़ां
- **झाड़ू:** घर में झाड़ू लगाने के लिए मुलायम झाड़ू।
- **पूंजनी:** जीवों को बचाने के लिए कोमल स्पर्श वाली पूंजनी।
- **नल का गरना:** पानी को छानने के लिए नल पर बांधने का एक कपडे का गरना।
- **छलनी:** अनाज, आटा, मसालें आदि छानने के लिए छलनी।
- **गैस बर्नर कवर:** छोटे जीवों को रात में गैस बर्नर में आश्रय लेने से रोकने के लिए गैस बर्नर को ढकने का साधन।

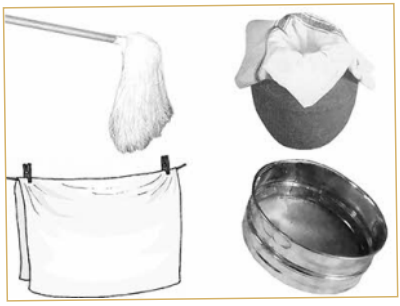

जतना कैसे कि जा सकती हैं?

- सुबह उठकर घर का काम शुरू करने से पहले घर में अवश्य झाड़ू लगा लें।
- गैस, प्राइमस आदि पोंज के ही चालू करें, ताकि अगर उसमें कोई सूक्ष्म जीव हो, तो उनको बचाया जा सकें।
- गैस बर्नर को रात के समय ढक्कन से ढक दें, ताकि छोटे जीव उसमें न बैठे। जिससे उन प्राणियों की रक्षा की जा सकती हैं।

- ब्रश करते समय नल को खुला न छोड़ें। इस तरह हम जल जीवों को बचा सकते हैं।
- नहाते समय शावर का प्रयोग न करें, पानी से भरी बाल्टी का प्रयोग करें।
- पानी उतना ही ले जीतना हमें पीना हो। ज्यादा पानी न लें और उसे बर्बाद न करें।
- नौकर को भी यह कहना चाहिए कि बर्तन साफ करते समय नल खुला न रखों।
- नाश्ता करते समय या खाना खाते समय एक ही जगह बैठकर खाएँ, इस तरह प्रयोग करें कि वह गिरे नहीं और गिरे तो उसे तुरंत साफ कर लें ताकि चींटियां आदि जीव उस पर न आए और हमारे पैरों तले कुचल न जाए।
- खाना उतना ही ले जितना हम खा सकें। अतिरिक्त लेकर बर्बाद न करें, जिससे बनस्पति के जीवों को बचाया जा सकें।
- चॉकलेट, आइसक्रीम आदि खाने के बाद उसके रेपर यहाँ – वहाँ न फैंके, कूड़ेदान में फेंक दें। रेपर पर कोई कीड़ा आ जाए तो हमारे पैर नीचे न आ जाए।
- छींकते, खांसते, डकार या जम्हाई लेते समय मुंह को रुमाल या हाथ से ढक लें। जिससे हम वायुकाय के जीवों की रक्षा कर सकें।
- शाम के समय खिड़की बंद कर दे ताकि मच्छर घर के अंदर न आ सकें।
- घर के दरवाजे खोलते और बंद करते समय इस बात की जांच कर लें कि कहीं छिपकली या अन्य जीव-जंतु तो नहीं हैं।
- यदि घर में काँकरोच, मकड़ी या चींटी हो तो सावधानी से उन्हें गुच्छे से निकाल दें और उन्हें उचित स्थान पर छोड़ दे, जहाँ उनको दुख न पहुंचे, चोट न आए।
- जरूरत न हो तो लाइट, पंखा, टीवी, कंप्यूटर, मोबाइल आदि बंद कर दे।
- चप्पल पहनने से पहले देख लें कि कहीं कोई जीव तो नहीं हैं।
- पूरे घर को हर कुछ दिनों में साफ करें।
- किताबों की अलमारी, कबाट, खिलौने की टोकरी आदि को साफ रखें, ताकि कोई जीवों की उत्पत्ति न हो।
- कार स्टार्ट करने से पहले एक बार चेक कर लें कि कार के नीचे कोई जीव (बिल्ली/कुत्ता) हैं तो नहीं।
- शौक के तौर पर कोई जानवर (पालतु) न रखें। हमें उन्हें उनके परिवारों और घरों से दूर ले जाकर उन्हें चोट नहीं पहुँचानी चाहिए। (जहाँ जानवर रहते हैं उसे उनका घर कहते हैं)
- किसी जानवर के पास से गुजरते हुए जब वह सो रहा हो या खा रहा हो, तो धीरे धीरे चलें, ताकि वे परेशान न हो।
- गड्डों में भरे हुए पानी में उछलकूद न करें।

- घास पर न चलें।
- सड़क पर या बगीचे में चलते समय फूल, पत्तीयाँ, डालियाँ न तोड़ें।
- नीचे देखते हुए चलें ताकि कोई जीव पैरों के नीचे न आ जाए।
- हमारी वाणी से किसी को ठेस न पहुँचे, ऐसी भाषा बोलें।
- व्यवसाय में निष्पक्षता और सत्यनिष्ठा बनाए रखें।
- नौकरों के साथ परिवार के सदस्यों जैसा व्यवहार करें।
- सत्ता या धन के लिए कोई धोखा न करें।
- निःस्वार्थ और परोपकारी जीवन जिए।

प्रतिदिन प्रत्येक क्रिया करते समय बहुत सावधानी से करें ताकि किसी के प्राणों का नुकसान न हो।

जीवन में जतना से होनेवाले लाभ

- जतना हमारे हृदय को कोमल बनाती हैं। जिस का हृदय कोमल हैं, उसके हृदय में प्रभु पधारते हैं।
- जीवों की जतना से हमें शाता मिलती हैं।
- प्रत्येक जीव के प्रति मैत्री का भाव जागृत होता हैं।
- कोई भी काम जतना के साथ करने से निकाचित कर्म का बंध नहीं होता।
- जतना करने से अनर्थकारी – बिनजरूरी अनेक पापों से बचा जा सकता हैं।
- जतना रखने से शाता वेदनीय और दीर्घ आयु का बंध होता हैं।

अपेक्षीत प्रश्नो

1. जतना याने क्या ?
2. जतना के उपकरण कौन-कौन से हैं?
3. मुझे प्रत्येक जीव के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए?
4. जल जीवों को कैसे बचाया जा सकता हैं?
5. जीवों को बचाने के क्या लाभ हैं?
6. घर के बाहर जाते समय किस तरह से जतना रख सकते हैं?
7. घर में जीवों की उत्पत्ति रोकने के लिए क्या करना चाहिए?

सफलता की कुंजी

हर कोई जीवन में हर क्षेत्र में सफलता चाहता हैं। तो हमें हर जगह सफल होने के लिए क्या करना चाहिए?

हम सब सौभाग्यशाली हैं कि हमें प्रभु का धर्म मिला हैं। प्रभु द्वारा दी गई समझ प्राप्त हुई हैं। जीवन में सद्गुणों को अपनाए और सफल बनें।

इसके प्रमुख उपाय इस प्रकार हैं-

1. विश्वास: प्रभु ने जो कहा हैं, वही सत्य हैं, इस पर अटल विश्वास होना चाहिए। देव, गुरु और धर्म में आस्था हमें सही रास्ते पर ले जाती हैं। हमें भटकने से रोकती हैं। मुझे जो मिलता हैं, जितना मिलता हैं, जब मिलता हैं और जैसा मिलता हैं, मेरे कर्म के अनुसार होता है, ऐसा कर्म के सिद्धांत में अटल विश्वास सफलता का द्वार खोल देता हैं।

2. देव, गुरु और धर्म के उपकारों का अनुभव: हमें जो सर्वोत्तम प्राप्त हुआ हैं, वह इस संसार में बहुत कम लोगों को मिलता हैं।

उसके लिए देव, गुरु और धर्म के प्रति अत्यधिक कृतज्ञ होना चाहिए। मुझे मनुष्य जन्म, जिनशासन की प्राप्ति, सद्गुरु का योग या सही मार्गदर्शन प्राप्त हुआ हैं, यह केवल देव-गुरु की कृपा का ही फल हैं। ऐसी निरंतर अनुभूति रहनी चाहिए।

3. माता-पिता के उपकार की अनुभूती: माता-पिता का उपकार हम कभी नहीं चुका सकते। जिन्होंने हमें जन्म दिया, हमें संस्कारों से सींचा, हमारी सभी जरूरतों को पूरा किया। उनके उपकार असंख्य हैं। उनके एहसानों को याद कर उन्हें रोजाना धन्यवाद कहना चाहिए।

कृतज्ञता का भाव - उपकार की अनुभूती का भाव अहंकार को नष्ट करता हैं और विनम्रता प्रकट करता हैं।

4. सकारात्मकता: हमेशां सकारात्मक सोच रखें। सकारात्मक सोच हमें आगे बढने के लिए प्रेरित करती हैं। कैसी भी स्थिति हो, हम उसे अच्छे से हैंडल कर सकते हैं।

5. नियमितता: जीवन में नियमितता होनी चाहिए। हर काम समय पर करना चाहिए। एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। गया हुआ समय कभी वापस नहीं आता। समय के महत्व को समझना चाहिए और बिना आलस्य के काम करना चाहिए।

6. द्रढ मनोबल: यदि हमारा मन मजबूत हो, इच्छा शक्ति मजबूत हो तो हम कठिन से कठिन कार्य भी आसानी से कर सकते हैं। हम एवरेस्ट पर भी चढ सकते हैं और मासक्षमण भी कर सकते हैं। हम कोई भी कठिन परीक्षा पास कर सकते हैं।

7. द्रढ संकल्प: यदि किसी कार्य को करने का द्रढ निश्चय कर लिया जाए तो वह कार्य अवश्य ही सफल होता हैं। द्रढ संकल्प से सिद्धि प्राप्त होती हैं। संकल्प में इतनी शक्ति होती हैं।

8. अनुशासन: अनुशासन कम समय में तथा व्यवस्थित ढंग से कार्य करा देता हैं। क्योंकि इसमें दोबारा मेहनत नहीं करनी पडती और इसका परिणाम बेहद खूबसूरत होता हैं।

9. धैर्य: जीवन में धैर्य रखना आवश्यक हैं। जल्दबाजी में किया गया कोई भी काम बिगड सकता हैं। प्रत्येक कार्य की सफलता के लिए व्यक्ति को धैर्य रखना चाहिए। सब्र का फल मीठा होता हैं।

10. सुयोजन: कोई भी कार्य उचित योजना बनाकर और सोच-समझकर करना चाहिए। जिससे हम पहले से ही जान सकते हैं कि आगे क्या करना हैं। हम आवश्यक व्यवस्था कर सकते हैं और समय बचा सकते हैं। कार्य छोटा हो या बडा, प्रत्येक कार्य को समान महत्व दें। कभी कभी छोटा कार्य भी महत्वपूर्ण होता हैं। छोटी सी गलती से बडा नुकसान हो सकता हैं इसलिए प्रत्येक कार्य पर ध्यान दें।

11. विवेक: प्रत्येक कार्य में विवेक रखना चाहिए। विवेक का अर्थ हैं सही समय पर सही काम करना। परिस्थिति और समय के अनुसार बिना किसी चीज की पकड रखे कार्य करना चाहिए।

12. विनय: विनय धर्म का मूल हैं। सफलता की सीढी हैं। कार्य या व्यक्ति को सम्मान देने से हर जगह सफलता मिलती हैं। विनम्रता से किया गया हर कार्य आसान और

सफल हो जाता हैं। प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति का आदर करना चाहिए।

एक विनय गुण से और भी कई गुण प्रगट होते हैं। विनयवान के घर ही संपत्ति टिकती हैं।

13. बडों और गुरुजनों की सेवा: सफलता का ताला तभी खुलता हैं, जब हम पर गुरुजनों और बडों का आशीर्वाद हो। इसलिए गुरुजनों और बडों को हमेशा प्रसन्न रखने का प्रयास करना चाहिए।

उपरोक्त उपायों को आजमाने से हमें अपने सभी कामों में सफलता मिलती हैं।

देवानुप्रिय ! सफलता की चाबी आपके हाथ में दे दी हैं। समय समय पर इसका इस्तेमाल करते रहिए। और हाँ! खयाल रखना! कहीं यह चाबियाँ खो ना जाए।

कंदमूल का स्वरूप

कंदमूल क्या है? इसका उपयोग क्यों नहीं करना चाहिए?

कंदमूल अनंतकाय हैं। अनंतकाय का अर्थ हैं कि शरीर एक हैं और एक शरीर में जीव अनंत हैं। आलू, प्याज, लहसुन, गाजर, अदरक, मूली, सुरण आदि कंदमूल हैं। साथ ही अंकुरित grains में जो अंकुर फूटतें हैं, वह अनंतकाय होते हैं।

भगवान महावीर ने केवलज्ञान से देखा और जान लिया कि कंद के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग में अर्थात् सूई की नोक के ऊपर रहे उतने भाग में अनंत जीव हैं। ऐसे कंदमूल का एक छोटा सा टुकडा खाने का अर्थ हैं, इन सभी अनंत जीवों का विनाश। सिर्फ जीभ के स्वाद के लिए अनंत प्राणियों को कुचल देना बिल्कुल ठीक नहीं हैं। जैसा मेरा जीव हैं, वैसा ही सब का जीव हैं। मुझे पीडा होती हैं, वैसे हर जीव को पीडा होती हैं। इसलिए भगवान ने कंदमूल खाने से मना किया हैं, क्योंकि कंदमूल में सबसे ज्यादा हिंसा होती हैं।

क्या हम खाने के लिए जीते हैं या जीने के लिए खाते हैं? इस पर विचार करना चाहिए... जीने के लिए खाना जरूरी हैं। लेकिन हमारा आहार ऐसा होना चाहिए जिससे जीवों को कम से कम वेदना हो।

आलू के चिप्स, garlic bread, गाजर का रस आदि जीभ को स्वादिष्ट लगते हैं, लेकिन क्या हमने उन अनंत जीवों की पीडा के बारे में सोचा हैं? भगवान ने कहा हैं कि जो वेदना हम दूसरों को देते हैं, वही वेदना हमें भी भुगतनी पडती हैं। क्या चंद समय के जीभ के स्वाद के लिए अनंत जीवों को पीडा देना उचित हैं???

आपको पता हैं... हम एक सांस लेते हैं और छोड देते हैं उतने समय में उनके (साढे सत्रह) 17-1/2 बार जन्म मरण हो जाते हैं। ये जीव जन्म और मृत्यु के अंतहीन कष्टों को झेल रहे हैं। आइए हम ऐसे जीवों पर दया करें और कंदमूल का त्याग कर घोर पाप से बचें।

वैज्ञानिक द्रष्टिकोण से भी कंदमूल को तामसी भोजन माना जाता हैं। जिस के प्रयोग से हमारे भीतर विकार बढता हैं, कषाय बढता हैं, क्रोध बढता हैं, इसलिए कंदमूल का त्याग करना ही उचित हैं।

लौकिक और लोकोत्तर उत्सव

पर्व का अर्थ है त्योहार। सामान्य दिनों से भिन्न, किसी घटना को प्रेरक बनाकर, उसे याद करके, हर्ष और उल्लास से जिसे सब मनाते हैं उसे पर्व कहते हैं।

यह दो प्रकार के हैं। **1.** लौकिक पर्व **2.** लोकोत्तर पर्व

दोनों में क्या अंतर हैं... आइए देखते हैं।

लौकिक पर्व	**लोकोत्तर पर्व**
1. आम तौर पर सब मनाते हैं।	1. खास लोग मनाते हैं।
2. इन्द्रियजन्य आनंद के साथ मनाए जाते हैं।	2. तप-त्याग किए जाते हैं।
3. अन्यों का देखकर, परंपरा के अनुसार मनाए जाते हैं।	3. भगवान के उपदेश और आज्ञा अनुसार मनाए जाते हैं।
4. मौज-मजा कि जाती हैं।	4. जीव दया की पालना होती हैं।
5. कर्म बंध से आत्मा को दूषित करते हैं।	5. कर्मक्षय से आत्मा को शुद्ध बनाते हैं।
6. जो भवभ्रमण बढाते हैं।	6. जिस से भवभ्रमण कम हो जाते हैं।

आईए ! देखते हैं कुछ लौकिक पर्व और लोकोत्तर पर्व।

लौकिक पर्व

1. होली - जो वनस्पतिकाय का शरीर हैं, ऐसी लकड़ियों को जलाकर उसमें अन्य वनस्पतिकाय के शरीर फूल, श्रीफल आदि डाल कर साथ ही वायु में उड़ रहे और जमीन पर रहने वाले छोटे-छोटे जीव भी जल जाए ऐसी अग्नि को प्रज्जवलित कर पर्व मनाया जाता हैं।

क्या हम वनस्पतिकाय के शरीरों को काटने, जलाने, मारने, अनगिनत जीवों को कष्ट पहुँचाकर सुखी हो सकते हैं?

2. रंगपंचमी - इस दिन कितना पानी बर्बाद होता हैं! एक दूसरे को रंग लगाया जाता हैं, रंगीन पानी की पीचकारियाँ छोड़ी जाती हैं, मजाक मस्ती की जाती हैं।

पानी की एक बूंद में श्री भगवंत ने कहा कि असंख्य जीव हैं। कलर की पीचकारियाँ तैयार करने और फिर रंगे हुए शरीर को साफ करने में बहुत सारे पानी का व्यय होता हैं। कितने सारे जल जीव मर जाते हैं। क्या अनगिनत जीवों को मारकर और कष्ट देकर हम सुखी हो सकते हैं? संसार का नियम हैं कि 'जो देते है, वही पाते है' तो बदले में हमें क्या मिलेगा? शाता या अशाता? अशाता ही मिलेगी। हमारे क्षणिक सुख के लिए वे बेचारे जीव कितना कष्ट सहते हैं और अंत में मर जाते हैं।

3. 31 दिसंबर – देर रात तक जगना, शराब पीना, मौज मजा करना, पटाखे फोड़ना आदि किया जाता हैं। पटाखों की आवाज से डर कर पक्षी उड़ने लगते हैं, जानवर, छोटे बच्चे डर जाते हैं, छोटे जीव मर जाते हैं।

क्या हम दूसरे प्राणियों को कष्ट देकर नया साल (नव वर्ष) मना सकते हैं!

4. उत्तरायण और अन्य पर्व- हमारी पतंग उड़ाने की मजा अन्य कई पक्षियों के लिए सजा बन जाती हैं। कई बार तो इंसानों का गला भी कट जाता हैं। धर्म के नाम पर सबके कानों के परदे फट जाए ऐसा शोर मचता हैं। देर रात तक लाइटें जली रहती हैं। उसमें बहुत से उड़ने वाले जीव पैदा होते हैं और मर जाते हैं। कभी कभी रसोई घर में पूरे दिन रसोई बनती रहती हैं और अगले दिन बासी खाना खाया जाता हैं। कुछ पर्व में दैवी शक्ति की पूजा, अर्चना करने के बजाय उस स्थान पर नृत्य, डान्स किया जाता हैं। इस सब में कितने जीवों की हिंसा होती हैं। दिवाली जैसे पवित्र दिनों में भी पटाखों, जुआ, शराब आदि के साथ त्योहार मनाया जाता हैं।

इस प्रकार हमने कुछ लौकिक उत्सवों को जाना और देखा कि उन उत्सवों को मनाने के लिए और क्षणिक सुखों की प्राप्ति के लिए मनुष्य कितने सारे जीवों की हिंसा करता हैं और अशातावेदनीय आदि अशुभ कर्मों को बांधता हैं। क्या किसी जीव को

दुःख देकर हमें सुख भुगतना चाहिए?

हमारे केवलज्ञानी भगवान ने हमें कितने सुंदर त्योहार बताए हैं। जिस में जीव हिंसा नहीं अपितु जीवदया की पालना होती हैं। आइए देखते हैं हमारे लोकोत्तर पर्व।

लोकोत्तर पर्व

1. पर्युषण पर्व – आठ दिनों तक चलने वाला पर्व, जिस में संतों और सतीजी के प्रवचन सुनकर व्यक्ति मार्गदर्शन पाता हैं और अपनी भोग-विलास वृत्ति को वश में करता हैं। यथासंभव अन्न का त्याग, स्नान का त्याग, रात्रि भोजन का त्याग, वनस्पति का त्याग, वगैरे के द्वारा पानी, वनस्पति, त्रसकाय के जीवों को अभयदान दिया जाता हैं। मौन रखा जाता हैं। धर्म आराधना ही होती हैं। जीव रक्षा के कार्य किए जाते हैं, हिंसा के नहीं। अपशब्द नहीं बोले जाते लेकिन क्षमा मांगी जाती हैं। मजाक-मस्ती नहीं बल्कि भगवान की भक्ति होती हैं।

विविध प्रकार के भोजन का स्वाद नहीं लेकिन भोजन की लालसा का त्याग होता हैं। पानी की बचत होती हैं, बर्बादी नहीं। एक-दूसरे को रंगो से नहीं, क्षमा के भावों से तरबतर किया जाता हैं। अंधकार में light का प्रकाश नहीं किंतु आत्मशुद्धि का प्रकाश प्रसारित होता हैं। कर्मो का संचय नहीं अपितु कर्मो का नाश करने में आता हैं।

1. संवत्सरी पर्व - पर्युषण के अंतिम दिन को संवत्सरी कहा जाता हैं। यह हमारा सबसे श्रेष्ठ त्योहार हैं। जैन कुल में जन्मे सभी लोग संवत्सरी पर्व की आराधना करते हैं। खान-पान पर नियंत्रण, रसोई बंद और कषाय मंद। घर की सफाई करने के बजाय आलोचना और प्रतिक्रमण द्वारा आत्म घर की सफाई की जाती हैं। हर किसीसे अपराधो की क्षमा मांगी जाति है और हर किसीको क्षमा दी जाती है।

2. आयंबिल ओली – यह पर्व नव दिनों तक चलता हैं। इसमें अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इन नव पदों की आराधना कि जाती हैं। नव दिनों तक आयंबिल तप किया जाता हैं। स्वाद से भरपूर नहीं, पर नीरस, रूखा, बेस्वाद आहार किया जाता हैं। गुणानुरागी बनकर गुणों की आराधना की जाती हैं। जप और तप किया जाता हैं। आहार की लालसा को

छोड़कर अणाहारकता के भावों को विकसाया जाता हैं।

3. जन्मकल्याणक – तीर्थंकर भगवान के शुभ जन्मोत्सव को जन्मकल्याणक कहते है। इसे मनाकर प्रभु के प्रति प्रेम दिखाया जाता हैं। उनका नाम स्मरण किया जाता हैं। उनके प्रति प्रेम और भक्ति से हृदय पवित्र और पुलकित होता हैं, अनंत कर्म नष्ट हो जाते हैं और अनंत पुण्य उत्पन्न हो जाते हैं। उत्कृष्ट भाव आ जाए तो तीर्थंकर नाम कर्म बंध होता हैं।

4. दिवाली का त्योहार – जैन धर्म के लोग दिवाली के त्योहार को भगवान महावीर निर्वाण कल्याणक के शुभ दिन के रूप में मनाते हैं। इसलिए वह उन दिनों को विशेष धर्म आराधना के साथ मनाते हैं। न रोशनी, न पटाखे, न नमकीन, न मिठाई। उसके बदले उपवास, पौषध, छठ्ठ, अठ्ठम की आराधना करते हैं। सत्कार्यो के माध्यम से पुण्य की रोशनी और पटाखों के बजाय भगवान की भक्ति के माध्यम से कर्म की कटाई। रात्रि में भगवान के नाम और गुणों का स्मरण। कर्मों का क्षय, क्षय और क्षय।

5. नूतनवर्ष (नयासाल) – गणधर गौतम स्वामी केवलज्ञान प्रागट्य दिन हैं। इसलिए उस दिन लब्धि निधान गणधर भगवंत गौतम स्वामी का स्मरण, उनके मंत्रों का जाप, रात को जल्दी सोना, सुबह जल्दी उठना और प्रभु प्रार्थना करना। संत दर्शन, मांगलिक श्रवण, बड़ों को प्रणाम कर कर्मो को चूर-चूर करना हैं।

देवानुप्रियो! आपने जाना लौकिक और लोकोत्तर पर्व के बारे में! दोनों में कितना अंतर हैं! यह हम पर परमात्मा की महाकृपा हैं कि हमें ऐसी सुबुद्धि मिली हैं। धन्यवाद भगवान!

कर्म और कर्म बंध के कारण

इस दुनिया में कुछ लोगों को हर क्षेत्र में सफलता मिलती हैं तो कुछ लोगों को असफलता। कुछ लोग अमीर हैं और कुछ गरीब हैं। कुछ पढ़ाई में प्रतिभाशाली हैं और कुछ नहीं हैं। कोई स्वस्थ हैं तो कोई तरह तरह की बीमारियों से ग्रसित! ऐसा क्यों हैं? यह सवाल हमें हमेशा आता हैं।

इन सभी प्रश्नों का उत्तर हैं... जीव के स्वयं के कर्म।

कर्म क्या हैं?

सारा संसार कार्मण वर्गणा से भरा हुआ हैं। कार्मण वर्गणा का अर्थ हैं कर्मो के कण, कर्म का कच्चा माल। जब कार्मण वर्गणा आत्मा के साथ जुड़ती हैं, तब उसे कर्म कहा जाता हैं।

कर्म आत्मा से किस प्रकार जुड़ते हैं?

जब हम कुछ सोचते हैं, बोलते हैं या कुछ करते हैं, तब आत्मा में उस प्रकार के भाव उठते हैं, हमारी आत्मा में कंपन होता हैं और उस कंपन से कार्मण वर्गणा आकर्षित होती हैं। (जैसे लोहा चुंबक की ओर आकर्षित होता हैं, वैसे कर्म आत्मा की ओर आकर्षित होते हैं।) और आत्मा के साथ दूध और पानी की तरह एकमेक हो जाते हैं, इसे कर्मबंध कहा जाता हैं। जैसे हमारे भाव, वैसे कर्म बंध होते हैं। भाव शुभ हो तो शुभ कर्म बंधेंगे। अशुभ भाव हो तो अशुभ कर्म बंधेंगे।

जो कर्म हमारी आत्मा के साथ जुडते हैं, वे उनका फल देते हैं।

जैसे कि, हम जैसा भोजन करते है, वैसा हमें result मिलता हैं, यदि हमें ज्वर हुआ हैं और दवाई ले लें तो उसके फल के रूप में ज्वर उतर जाएगा, वैसे ही जैसे कर्म करते हैं उसी के अनुसार हमें उसका फल मिलता हैं।

कर्म का फल कब मिलता हैं?

कर्म का फल तुरंत नहीं मिलता। कर्म कुछ समय के बाद ही फल देता हैं अर्थात् जब फल देने का समय आता हैं, तब फल मिलता हैं।

कर्म के प्रकार – यूं तो कर्म अनंत है लेकिन हमें समझने के लिए शास्त्रकारों ने इसके 8 प्रकार बताए हैं।

1. ज्ञानावरणीय कर्म: जिस प्रकार आँखों पर बंधी पट्टी देखने की शक्ति को रोक देती हैं, उसी प्रकार ज्ञान पर आवरण करने वाले कर्म को ज्ञानावरणीय कर्म कहा जाता हैं। कर्म की परत मोटी होगी तो ज्ञान का विकास कम होगा। हमारे पास वह ज्ञान हैं, जो भगवान के पास हैं। लेकिन उस पर आवरण आ गया हैं। इस वजह हमारा ज्ञान प्रकट नहीं होता।

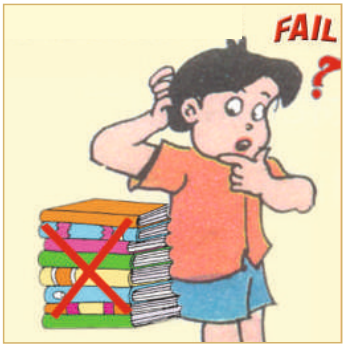

ज्ञानावरणीय कर्म का बंध कैसे होता हैं?

- ज्ञानीजनों, पंडितों, गुरुओं का उपहास उड़ाकर, उनके सामने बोलकर, उनका बुरा-भला बोलकर... सोचकर...
- हमें आता हो फिर भी किसी को न सिखाकर।
- ज्ञान का अध्ययन करने में कंटाला महसूस करना, पढ़ने में कंटाला करना।
- ज्ञानी के उपकार भूलना।
- ज्ञानी की अशातना करना।
- ज्ञानी पर गुस्सा करना।
- ज्ञानी व्यक्ति के साथ बहस करना।
- किसी के पास से ज्ञान या मदद ली हो उनका नाम छुपाना।
- किसी की शिक्षा में बाधा डालना।
- किसी ज्ञानी व्यक्ति से बेवजह झगड़ा करना या बहस करना।
- तीर्थंकर भगवान के केवलज्ञान पर संदेह या तर्क-वितर्क करना।

• ज्ञान के साधनों, पुस्तकों आदि को फाड़कर, फेंककर, कहीं भी छोड़ कर उसकी अशातना करना।

उपरोक्त कारणों से ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होता हैं।

ज्ञानावरणीय कर्म का प्रभाव:

• पढ़ाई के बावजूद याद नहीं रहता।

• परीक्षा के दौरान जो याद किया हुआ था, वह सब भूल जाते हैं।

• पढ़ना चाहते हैं लेकिन उचित सुविधा नहीं मिलती। किताबें, लैपटोप, शिक्षक या गुरु नहीं मिलते।

• हम बहरे, गूंगे, अंधे, मानसिक रूप से विक्षिप्त बनते हैं।

• आँख, कान आदी इन्द्रियाँ नहीं मिलती। उदाहरण के लिए चींटियाँ , मकडी, भृंगों आदि जीवों को यह इन्द्रियाँ नहीं होती, या इन्द्रियाँ मिल जाती हैं लेकिन वे काम नहीं करती। उदा. प्रज्ञाचक्षु व्यक्ति।

ज्ञानावरणीय कर्मो को कैसे दूर किया जा सकता है?

• ज्ञानियों का सम्मान करने से।

• ज्ञानी का बार बार उपकार मानकर, उनका धन्यवाद करने से।

• दूसरों की पढ़ाई में मदद करने से।

• ज्ञान के उपकरणों की भेंट देने से।

• ज्ञानीपुरुष या गुरु की बात को तुरंत मान लेने से।

ज्ञानावरणीय कर्म दूर होते हैं।

2. दर्शनावरणीय कर्म: जैसे राजा के महल में जाने से चोकीदार (द्वारपाल) रोकता हैं, भीतर जाने नहीं देता. हम राजा और महल को नहीं देख पाते हैं, न ही हमें राजा या महल की सामान्य जानकारी प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार यह कर्म वस्तु का सामान्य बोध नहीं होने देता।

दर्शनावरणीय कर्म का बंध कैसे होता हैं?

- दर्शनी की निंदा करने से।
- उनकी अशातना करने से।
- दर्शनी से झगड़ा या बहस करने से।
- दर्शनी की गतिविधियों में हस्तक्षेप करके।
- 5 इंन्द्रियों का गलत इस्तेमाल करने से।

उपरोक्त कारणों से दर्शनावरणीय कर्म का बंध होता हैं।

दर्शनावरणीय कर्म का प्रभाव:

- इंन्द्रियों की शक्ति क्षीण हो जाती हैं।
- नेत्र शक्ति में कमी होती हैं।
- दर्शनावरणीय कर्म के कारण नींद आती हैं।
- बैठे बैठे सोना, चलते-फिरते सोना, नींद में बात करना आदि कोई भी प्रवृत्ति होती हैं।
- धार्मिक साधना-आराधना या अध्ययन के लिए बैठते हैं तो नींद आने लगती हैं।

दर्शनावरणीय कर्म को कैसे दूर किया जा सकता हैं?

- इन्द्रियों का सदुपयोग करने से।
- जीवदया का पालन करने से।
- सभी जीवों के साथ मित्रवत् व्यवहार करने से।
- दर्शनी का विनय करने से।

3. वेदनीय कर्म: जिस से भौतिक सुख-दुःख की अनुभूति होती हैं, वे वेदनीय कर्म कहलाते है।

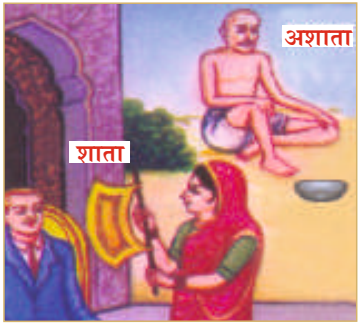

वेदनीय कर्म दो प्रकार के होते हैं।

1. शाता वेदनीय कर्म 2. अशाता वेदनीय कर्म

शाता वेदनीय कर्म – खुशी, अनुकूलता की अनुभूति कराता हैं।

शाता वेदनीय कर्म का बंध कैसे होता हैं?

- अन्य जीवों के प्रति दयालु होने से।

- अन्य जीवों के कष्टों को दूर करने से।
- सेवा, वैयावच्च करने से।
- अन्य जीवों को अनुकूलता देने से।

उपरोक्त कारणों से शातावेदनीय कर्म का बंध होता है।

शाता वेदनीय कर्म का प्रभाव :

- शरीर स्वस्थ रहता हैं, मानसिक शांति प्राप्त होती हैं।
- मन को पसंद आने वाले शब्द सुनने एवं ऐसे द्रश्य देखने मिलते हैं।
- अच्छी लगे ऐसी महक मिलती हैं।
- स्वादिष्ट भोजन मिलता हैं।
- मन , वचन एवम काया का सुख प्राप्त होता है।

2. अशातावेदनीय कर्म: कष्ट और विपत्ति का अनुभव कराता हैं।

अशातावेदनीय कर्म बंध के क्या कारण होते हैं?

- अन्य जीवों की हिंसा करने से।
- अन्य जीवों को दुख, अशाता और अशांति देने से।
- दूसरों को मारने, परेशान करने से, अन्य जीवों को नुकसान पहुँचाने से।

उपरोक्त कारणों से अशातावेदनीय कर्म का बंध होता हैं।

अशातावेदनीय कर्म का प्रभाव:

- शरीर अस्वस्थ रहेगा, मानासिक अशांति रहेगी।
- ऐसे शब्दों को सुनना पडेगा, जो पसंद नहीं हैं।
- बुरी चीजें देखने मिलेगी।
- पसंद न हो ऐसी दुर्गंध मिलेगी।
- सड़ा हुआ, बासी, बेस्वाद भोजन मिलेगा...आदि...

अशातावेदनीय कर्म को कैसे दूर किया जा सकता हैं?

- अन्य जीवों को साता पहुचाने से।
- सब जीवों के प्रति दयाभाव रखने से।
- जीतना हो सके अहिंसामय जीवन जीने से।

- जड पदार्थों के साथ भी उचित व्यवहार करने से।
- नव प्रकार के पुण्य बंध करने से।

4. मोहनीय कर्म: मोहनीय कर्म सभी कर्मों का राजा हैं। मोह का अर्थ हैं भ्रम। यह कर्म सच्चाई का पता नहीं चलने देता। **जिस कर्म के कारण...**

- व्यक्ति गलत को सही और सही को गलत मानता हैं।
- सच्चे देव, गुरु और धर्म को नहीं पहचानता।
- अपने आत्म स्वरूप को नहीं जानता।
- शायद सत्य को समझ पाए लेकिन अच्छा आचरण ना कर सकें।
- क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि अशुद्ध भाव करता हैं।

मोहनीय कर्म बंध के क्या कारण होते हैं?

- जीव-अजीव वस्तुओं के प्रति राग-द्वेष करने से। मुझे यह चीज बहुत अच्छी लगती हैं। मुझे यह चीज बिल्कुल पसंद नहीं हैं। मुझे यह व्यक्ति पसंद हैं लेकिन मैं इसे देखता हूँ तो मुझे बहुत गुस्सा आता हैं... इस प्रकार के भावों से....
- तीव्र क्रोध, अहंकार, छल, लोभ करने से।
- देव, गुरु, धर्म के प्रति श्रद्धा, विश्वास न करने से।
- व्रत, पच्चक्खान का पालन न करने से।
- व्रत- पच्चक्खान का पालन करने वाले व्यक्ति की अशातना करने से।

उपरोक्त कारणों से मोहनीय कर्म बंध होते हैं।

मोहनीय कर्म को कैसे दूर करें?

- क्रोध, अहंकार, छल, लोभ जैसे भावों का दमन करके।
- सभी जीवों के साथ समान व्यवहार करके।
- देव-गुरु-धर्म में द्रढ़ विश्वास करके।
- संसार में, जीवन में विरक्त भाव के साथ रहने से।

• सभी प्रकार की प्रतिकूलताओं को सहन करके।

5. आयुष्य कर्म: आयुष्य कर्म के कारण जीव को देव-मनुष्य, तिर्यंच या नारकी के शरीर में कारागृह के समान रहना पड़ता हैं। अर्थात् आयुष्य कर्म के कारण हमें (आत्मा को) शरीर में रहना पड़ता हैं।

आयुष्य कर्म बंध के कौन से कारण है?

आयुष्य कर्म के चार प्रकार है।

1. नरकायुष्य:

• महाआरंभ करने से, अनेक प्राणियों की हिंसा करने से।

• बहुत अधिक लगाव या ममत्वभाव के साथ धन और संपत्ति जैसी भौतिक वस्तुओं को रखने से।

• अंडा, मांसाहार का सेवन करने से।

• पंचेन्द्रिय जीवों का वध करने से।

आदि कारणों से नरक गति के आयुष्य का बंध होता हैं। जीव नरक में जाता हैं।

2. तिर्यंचायुष्य:

• माया, ठगी करने से।

• मुँह से मीठा बोलने और मन में बुरे विचार रखने से।

• बार बार झूठ बोलने से।

• धंधे में गलत काम करना। जैसे कम वजन देना, जो दिखाया जाता हैं, उसके बदले दूसरी वस्तु देना।

आदि कारणों से तिर्यंच गति के आयुष्य का बंध होता हैं। जीव तिर्यंच गति में जाता हैं।

3. मनुष्यायुष्य:

• स्वभाव में सरलता होने से।

• विनय और नम्रता के भावों से।

• जीवों के प्रति करुणा-दया का भाव रखने से।

• क्रोध, ईर्ष्या और अहंकार न करने से।

आदि कारणों से मनुष्य गति के आयुष्य का बंध होता हैं। जीव मनुष्य गति में जाता हैं।

4. देवायुष्य:

• साधु जीवन का पालन करने से।
• श्रावक धर्म की पालना करने से।
• तपस्या या त्याग करने से।
• भौतिक सुख की इच्छा किए बिना तपस्या करने से।

आदि कारणों से देवगति के आयुष्य का बंध होता हैं। जीव देव गति में जाता हैं।

चार गतियों में सबसे अच्छी गति मनुष्य गति हैं। देवता भी इस मनुष्य गति की कामना करते हैं, क्योंकि मानव रूप में ही आत्मा कर्म से मुक्त होकर पंचम गति अर्थात् मोक्ष गति को प्राप्त कर सकती हैं।

अशुभ आयुष्य कर्म बंध को कैसे दूर करें?

•अनन्त प्राणियों की हिंसा करने वाले बड़े-बड़े कारखाने आदि न रखने से।
• रिश्तेदारों या संपत्ति से गहरा लगाव न होना।
• माया छल कपट को त्याग कर सादा जीवन जियें।
• शराब, मांस आदि व्यसनों का त्याग करने से।
• व्रत-नियम आदि का पालन करने से।

6. नाम कर्म: नाम कर्म चित्रकार के समान हैं। जैसे एक चित्रकार अलग अलग चित्र बनाता हैं और फिर उन्हें रंग-बिरंगा बनाता हैं। इस प्रकार नाम कर्म से शरीर के रंग, ऊंचाई, वजन, आकार, आवाज, सौंदर्य आदि सब शरीर से संबंधित निर्धारित होता हैं। यह दो प्रकार का होता हैं।

1. शुभ नाम **2.** अशुभ नाम

शुभ नाम

- हमारे मन, वचन एवं काया की सरलता से।
- किसी से झगड़ा या बहस न करने से।
- अच्छा व्यवहार करने से।

उपरोक्त कारणों से शुभ नाम कर्म का बंध होता हैं।

शुभ नाम कर्म का प्रभाव :-

प्रतिभाशालि, स्वरुपवान शरीर, सुंदर स्वर, सबको भाए ऐसी अनुकूल सुहावनी, सुडौल और बलवान देह रचना प्रात होती हैं।

अशुभ नाम कर्म का बंध कैसे होता हैं?

- अपने मन, वचन, काया की वक्रता से अर्थात् इन तीनों का अशुभ में प्रवर्तन कराने से।
- किसी से लड़कर, बहस करके।
- बुरा व्यवहार करने से।

उपरोक्त कारणों से अशुभ नाम कर्म का बंध होता हैं।

अशुभ नाम कर्म का प्रभाव :-

भद्दा शरीर, भद्दी आकृति, कर्कश आवाज, सभी को पसंद न आए, ऐसी प्रतिकूल और शिथिल देहरचना प्राप्त होती हैं।

अशुभ नाम कर्म को कैसे दूर किया जा सकता है?

- मन, वचन, काया से शुभ कार्य करने से।
- लड़ाई-झगड़ा या बहस न करके।
- संसार के सभी प्राणियों के लिए मंगल भावना रखने से।
- परोपकार आदि के कार्य करने से।

7. गोत्र कर्म: जैसे कुंभकार घड़ा बनाता हैं, जिस में किसी का दाम कम होता हैं तो किसी का ज्यादा। किसी बर्तन का उपयोग अच्छे काम के लिए किया जाता हैं, किसी

बर्तन का उपयोग अशुभ काम के लिए किया जाता हैं। वैसे ही गोत्र कर्म इस कुंभकार के समान होता हैं। किसी का जन्म उच्च कुल में होता हैं और किसी का नीच कुल में जन्म होता हैं। किसी को सम्मान मिलता हैं तो किसी को अपमान।

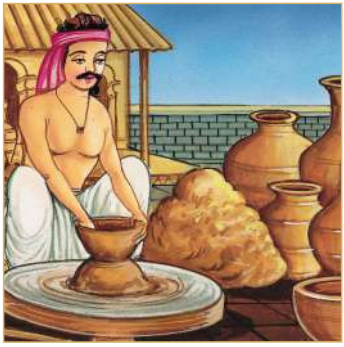

यह दो प्रकार का होता हैं –

1. उच्च गोत्र **2.** नीच गोत्र

उच्च गोत्र कर्म का बंध कैसे होता हैं?

- अपने परिवार, रूप, ज्ञान आदि का अभिमान न करने से।
- दूसरों के सद्गुण देखने से।
- दूसरों का अच्छा देखकर ईर्ष्या न करने से।
- विनय, नम्रता, सरलता जैसे गुण होने से।
- गुणीजनों को वंदन, नमस्कार करने से।

उपरोक्त कारणों से उच्च गोत्र कर्म बंध होता हैं।

उच्च गोत्र कर्म का प्रभाव :-

जिससे व्यक्ति अच्छे कुल में - अच्छी जाति में जन्म लेता हैं, सुंदर शरीर- रूप, शारीरिक और मानसिक रूप से शक्तिशाली, मान, सम्मान, पद, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य, सत्ता आदि अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं।

नीच गोत्र कर्म का बंध कैसे होता हैं?

- अपने ज्ञान, बुद्धि, शक्ति, रूप पर गर्व करने से।
- दूसरों के दोष देखने, ईर्ष्या करने से।
- ज्ञानि, सज्जन, संयमी आत्माओं का तिरस्कार, द्वेष, नफरत करने से जीव।

उपरोक्त कारणों से नीच गोत्र कर्म का बंध करता हैं।

नीच गोत्र कर्म का प्रभाव :-

जिस के कारण व्यक्ति को नीच जाति, नीच कुल, शारीरिक और मानसिक रूप से

कमजोर या रोगग्रस्त शरीर मिलता हैं, अच्छा रूप नहीं मिलता, तपस्या नहीं कर पाता, सूत्र आदि सुनने न मिले, अपयश, पराधीनता मिलती हैं। समाज में पद, प्रतिष्ठा, सम्मान नहीं मिलता आदि...

नीच गोत्र कर्म को कैसे दूर किया जा सकता है?

- देव, गुरु, धर्म को भाव पूर्वक वंदना करने से।
- जाति, कुल, शक्ति, धन का अभिमान न करके।
- नम्रतापूर्वक का व्यवहार रखने से।
- जो मिला है उसी में संतुष्ट रहना आदि...

8. अंतराय कर्म: वस्तु और उसकी प्राप्ति के बीच जो अंतर पडता हैं, किसी भी कार्य में रुकावटें, बाधाएं आए वह अंतराय कर्म हैं।

अंतराय कर्म का बंध कैसे होता हैं?

- दान न देने से या दान देने वाले को रोक लेने से।
- यदि किसी को लाभ हो रहा हो तो उसमें बाधा उत्पन्न करने से।
- तपस्या, धार्मिक कार्यों, अनुष्ठान आदि में बाधा देने से।
- किसी को शुभ, अच्छा कार्य करने मे रोक लगाने से।

उपरोक्त कारणों से अंतराय कर्म का बंध होता है।

अंतराय कर्म का प्रभाव :-

- दान देने की सुविधा होते हुए भी दान ना दे पाना।
- वस्तु होते हुए भी उसका आनंद नहीं लिया जा सकता। उदाहरण:- मिठाइयाँ हैं, लेकिन मधुमेह के कारण उसे खा नहीं सकतें।
- उच्च अध्ययन के लिए सुविधाएँ नहीं मिलती।
- गहने हैं लेकिन त्वचा की एलर्जी के कारण इसे पहन नहीं सकते।

ऐसी सभी बाधा अंतराय कर्म के प्रभाव से आती हैं।

अंतराय कर्म कैसे दूर होता हैं?

- दान देने से, तपस्या करने से।
- किसी के लाभ या भोग या उपभोग में बाधारूप न बनने से।
- स्वयं की शारीरिक, मानसिक या आर्थिक शक्ति का सदुपयोग करने से।
- सत्कर्मों की अनुमोदना करने से।

अंतराय कर्मों का नाश होता हैं।

हमने 8 कर्मों को और उनका बंध कैसे होता हैं, यह जाना। सतर्क रहके इस कर्म बंध से बचें। जो छोड़ने जैसा हैं, उसे छोड़ दें। जो करने योग्य हैं, उसे करें और आत्मकल्याण के पथ पर आगे बढ़ें।

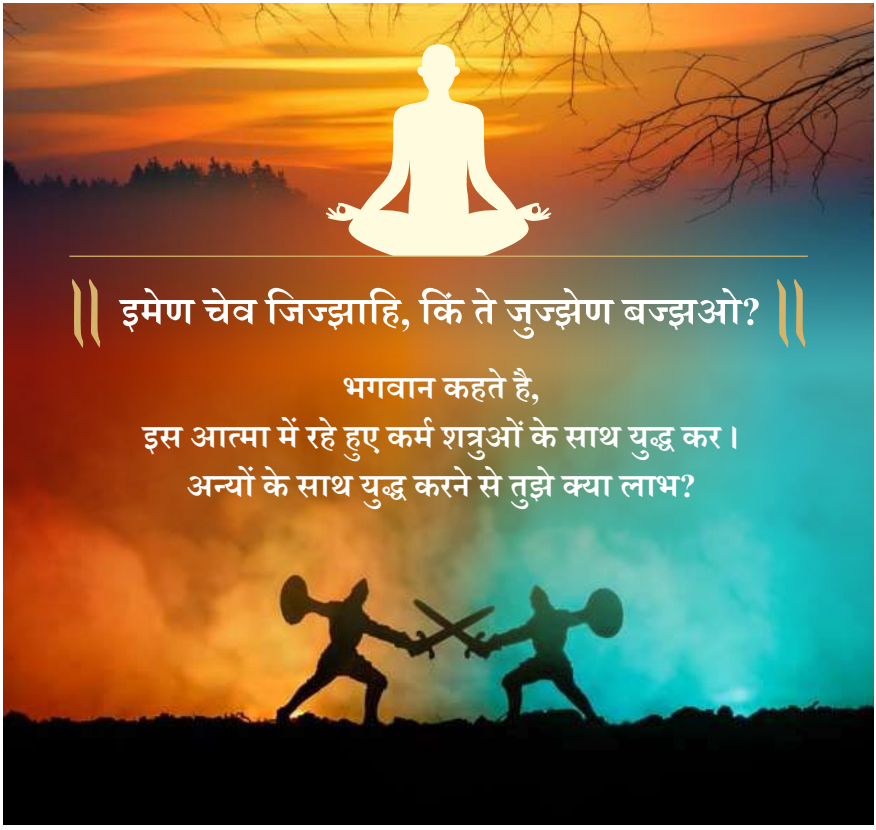

कर्म और पूर्व जन्म

हमने अक्सर सुना हैं कि हमें अपने कर्मों की कींमत चुकानी पड़ती हैं।

कुछ लोग मानते हैं कि... इस जीवन में खाओ, पिओ, मौज करो। भगवान ने जो दिया हैं, उसका आनंद लें। कौन जानता हैं कि पुनर्जन्म होता है या नहीं? कर्म जड हैं, वह अपना फल कैसे दे सकता हैं? किसने कैसा कर्म किया हैं, उसे कैसा फल देना हैं, उसका हिसाब कौन रखता होगा...आदि...

इस तर्क से वे कर्म या पुनर्जन्म को स्वीकार नहीं करते हैं, लेकिन इस संसार में प्राणियों की विविधता को देखकर कर्म और पुनर्जन्म आसानी से सिद्ध हो जाता हैं।

1. एक ही माँ की दो संतानों के स्वभाव भिन्न-भिन्न होते हैं। एक बालक बुद्धिमान और दूसरा मंदबुद्धि होता हैं। यह भिन्नता दोनों संतानों के पूर्वजन्म के कर्मों के कारण होती हैं। दोनों के अलग अलग कर्म हैं, पूर्व जन्म के संस्कार हैं, इसलिए इस जन्म में दोनों के अलग अलग स्वभाव हैं।

2. नवजात शिशु को दूध पिलाएं तो वह अपने आप से पीता हैं। दूध कैसे पिया जाता हैं, वह उसे सिखाना नहीं पड़ता। शिशु के पूर्व जन्म के आहार ग्रहण करने के संस्कार साथ होते हैं, जिससे वह अपने आप दूध पी लेता हैं। यह क्रिया भी पूर्व जन्म को सिद्ध करती हैं।

3. बहुत से जीवों को पूर्व भव का ज्ञान, जातिस्मरण ज्ञान होता हैं और वे अपने पिछले जन्मों को स्पष्ट रूप से देखते हैं। इसके लिए शास्त्रों में कई उदाहरण दिए गए हैं।

चंडकौशिक सर्प ने ज्ञान के माध्यम से अपने पिछले जन्म के साधु रूप को देखा, अपने स्वयं के क्रोध के फल को जान लिया और तुरंत शांत हो गया। कर्म के फल को जानकर चंडकौशिक इतना शांत हो गया कि उसने अपने एक भव को नहीं बल्कि अपनी संपूर्ण भव परंपरा को सुधार लिया।

मृगापुत्र को साधु के दर्शन से, मेघकुमार को प्रभु महावीर के वचनों से जातिस्मरण

ज्ञान हुआ था। उपरोक्त द्रष्टांत कर्म और पुनर्जन्म को सिद्ध करते हैं।

जीव इस जन्म के कर्मों के अनुसार अगले जन्म का निर्माण करता हैं। आयुष्य बंध के अनुसार गति, जाति, शरीर आदि निर्धारित होते हैं।

ये इतिहास के उदाहरण थे लेकिन आज भी हम देखते हैं कि कुछ आत्माएँ बहुत कम उम्र में ही दीक्षा ग्रहण करते हैं। ऐसी घटना तभी संभव हैं, जब उस जीव ने भूतकाल में अपने आप में संय़म के संस्कार को बोया हो। कोई 3 साल का बच्चा पूरी सामायिक सिख लेता हैं, 5 साल की लड़की पूरा प्रतिक्रमण कंठस्थ कर लेती हैं, 6 साल का बच्चा (आठ उपवास) अट्ठाई तप की तपस्या करता हैं... ये सभी घटनाएँ पूर्व भव के संस्कारों को प्रकट करती हैं।

भगवान ने कहा हैं कि जीव अनादि काल से चौरासी लाख जीवायोनि में परिभ्रमण कर रहा हैं। जहाँ जहाँ जन्म लेता हैं, जिस के साथ रहता हैं, जिन जिन वस्तुओं का भोग करता हैं, यह सब कुछ उसके कर्म का फल हैं। उसके राग द्वेष की परंपरा युगों युगों तक उनके साथ रहती हैं।

जीव जब तक मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, विषय-कषाय, अशुभयोग के परिणाम-भाव उत्पन्न करता रहेगा, तब तक वह कर्म बंध करता रहेगा। जब तक कर्म बंध होता रहेगा, तब तक वह जन्म-मरण के चक्र में और पीड़ा की परंपरा में पूरे संसार में घूमता रहेगा। इस भव में हमारे जो संबंध अपने सगे-संबंधियों, रिश्तेदारों, मित्रों से हैं, वे हमारे पूर्व जन्म के ऋणानुबंध और लेन-देन के कारण हैं।

हमने भूतकाल में किसी को सुख या दु:ख दिया हो, उस समय राग अथवा द्वेष से जो शुभ या अशुभ कर्म बंधन हुए हो, वह हमें इस जन्म में भुगतने पडते हैं, व्यक्ति-वस्तु-पदार्थ या घटना तो सिर्फ निमित्त हैं। संसार का समग्र व्यवहार अपने कर्मों के अनुसार ही होता हैं।

कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांत में विश्वास हमारे राग-द्वेष को कम कर देता हैं, समभाव की साधना आसान हो जाती हैं, यही सम्यक् दर्शन प्राप्त करने का साधना हैं।

चार गतियों में मनुष्यगति ही एक मात्र ऐसी गति हैं, जिस में मनुष्य न केवल धर्म का आचरण कर सकता हैं, बल्कि समस्त कर्मों को नष्ट करके सिद्ध दशा-मोक्ष भी प्राप्त कर सकता हैं, इसलिए आइए हम कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांत को समझें और स्वीकार करें और अपने भीतर जो राग और द्वेष के भाव हैं, उन्हें कम करके जीवन को उज्ज्वल बनाए।

पुन्य और पाप का स्वरुप

इस विषय को हम प्रश्न-उत्तर के माध्यम से समझते हैं...

प्रश्न 1: पाप क्या हैं?

उत्तर 1: जिस कार्य का फल दु:ख के स्वरुप में भूगतना होता हैं, वह पाप कहलाता हैं।

प्रश्न 2: किस क्रिया को पाप कहा जाता हैं?

उत्तर 2: हिंसा करना, किसी को पीटना, तंग करना, क्रोध करना, झूठ बोलना, चोरी करना, लड़ाई-झगड़ा करना, अनुशासन न रखना, बड़ों के सामने बोलना, चुगली करना, दूसरों का अपमान करना, व्यसनों का सेवन करना... आदि पाप हैं। पापस्थानक के 18 प्रकार हैं।

प्रश्न 3: पाप करने से क्या होता हैं?

उत्तर 3: पाप करने से नरक या तिर्यंचगति में जाना पड़ता हैं। कुत्ता, कौआ आदि बनना पड़ता हैं। हाथ, पैर, आँख आदि नहीं मिलते। शरीर, संयोग, संपत्ति आदि की प्राप्ति नहीं होती। सब खराब मिलता हैं। किसी भी क्षेत्र में सफलता नहीं मिलती, मन को भाऐ ऐसा कुछ नहीं होता। अनाथालय में जीवन बिताना पड़ता हैं। अपमान होता हैं। अनेक प्रकार से दु:ख-पीड़ा भोगने पड़ते हैं।

प्रश्न 4: पुन्य क्या हैं?

उत्तर 4: जिस कार्य का फल सुख के रूप में भोगा जाता हैं, उसे पुन्य कहते हैं।

प्रश्न 5: कौन से कार्यों को पुन्य कहा जाता हैं?

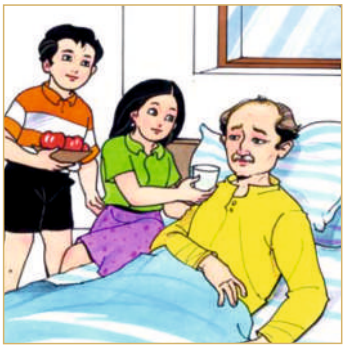

उत्तर 5: किसी की मदद करना, किसी को परेशान न करना, शांति बनाए रखना, अनुशासन रखना, सेवा के अच्छे कार्य करना, तीर्थों पर जाना, संतों के दर्शन करना, वंदन-नमस्कार आदि करना, बड़ों की आज्ञा मानना, दान देना, गरीबों को खाना खिलाना, प्यासे को पानी पिलाना, किसी को बैठने की जगह देना, मन से शुभ भाव करना, वचन से अच्छा बोलना, अधिक से अधिक समय धर्म–ध्यान में व्यतीत करना... आदि...

प्रश्न 6: पुन्य करने से क्या होता हैं?

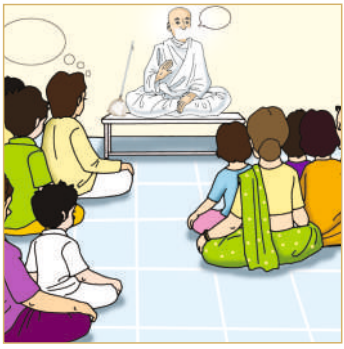

उत्तर 6: पुन्य करने से मनुष्य या देवगति में जन्म होता हैं। शरीर, संयोग, संपत्ति आदि सब अच्छा मिलता हैं। सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। हाथ, पाँव, नेत्र आदि मिलते हैं। सभी क्षेत्रों में सफलता, सम्मान मिलता हैं, सभी मनोरथ साकार होते हैं, अच्छा परिवार मिलता हैं... आदि...

प्रश्न 7: देवानुप्रियो! हमें क्या करना चाहिए?

उत्तर 7: यदि जीवन में सब कुछ अच्छा चाहते हैं, तो पुन्य कार्य अवश्य करने चाहिए। इसलिए अब पाप कर्मों से दूर रहकर पुन्य कर्मों को करते रहना हैं।

सभी जीव जीना पसंद करते हैं, खुशी-अनुकूलता पसंद करते हैं, जो हमें अच्छा लगता हैं, वही सबको अच्छा लगता हैं... इसलिए यदि हम जीवन में दु:ख और प्रतिकूलता नहीं चाहते हैं, तो पुन्य कर्म करें।

जितना अधिक समय हम धर्म-ध्यान में बिताएंगे, परमार्थ के कार्य करेंगे, उतने ही अधिक भद्रपुन्य कर्मों का बंध करेंगे और आत्मशुद्धि... मोक्ष की ओर बढ़ने के साधन और अनुकूलताओं को प्राप्त करेंगे।

पाँच ज्ञान के नाम और ज्ञान वृद्धि के बोल

ज्ञान स्व-पर प्रकाशक हैं।

आत्मा के अनंत गुणों में ज्ञानगुण प्रमुख हैं। ज्ञानगुण वह हैं, जो सजीव और निर्जीव के बीच के अंतर को प्रकट करता हैं। ज्ञान दीपक के समान स्व-पर प्रकाशक हैं। ज्ञान से ही स्वयं का बोध होता हैं और संसार का भी बोध होता हैं। ज्ञान से ही जीव अपने सुख-दुःख को जानता और भुगतता हैं। ज्ञान से ही जीव अपने हित- अहित का विचार कर, अहित का मार्ग त्याग कर हित का मार्ग, कल्याण का मार्ग स्वीकार करता हैं।

आत्मा स्वयं ज्ञान स्वरूप हैं। परन्तु कर्म के आवरण होने से हमारा ज्ञान प्रकट नहीं होता। इसलिए हमें उस कर्म को दूर करने का पुरुषार्थ करना चाहिए। ज्ञान आत्मा के भीतर ही हैं, बाहर कहीं नहीं, इसलिए ज्ञान प्राप्त करने के लिए नहीं बल्कि ज्ञान को प्रकट करने के लिए पुरुषार्थ करना हैं।

देवानुप्रिय! ज्ञान के बारे में इतनी जानकारी प्राप्त की। अब क्या करें?

ज्ञान के प्रागट्य के लिए पुरुषार्थ करना हैं।

आइए देखें कि भगवान ने ज्ञान के प्रकटी करण और उसकी वृद्धि के लिए क्या कहा हैं...

पढमं नाणं! तओ दया

भगवान का वचन हैं कि, पहले ज्ञान प्राप्त करों। ज्ञान प्राप्त करने पर ही दया का पालन कर पाएंगे। हेय और उपादेय को जानकर अर्थात् क्या करने जैसा हैं और क्या छोड़ने जैसा हैं, यह जानकर ही उस प्रकार से आचरण होता हैं। जब तक आचरण शुद्ध नहीं होगा, तब तक मोक्ष संभव नहीं हैं। इसलिए ज्ञान अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

ज्ञान वृद्धि के बोल

1. ज्ञान सीखने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए।
2. उपकारी गुरु का विनय करने से ज्ञान में वृद्धि होती हैं।
3. कम नींद लेकर पढ़ाई करने से ज्ञान बढ़ता हैं।
4. भूख से कम खाकर पढ़ाई करने से ज्ञान बढ़ता हैं।
5. मौन रहकर अध्ययन करने से ज्ञान में वृद्धि होती हैं।
6. ज्ञानी व्यक्ति के पास अध्ययन करने से ज्ञान में वृद्धि होती हैं।
7. सिखे हुए ज्ञान को दोहराने से ज्ञान बढ़ता हैं।
8. किसी भी वस्तु या पदार्थ में आसक्ति कम रखने से ज्ञान बढ़ता हैं।
9. पाँचों इंन्द्रियों (कान, आँख, नाक, जीभ और स्पर्श) को वश में रखने से ज्ञान की वृद्धि होती हैं।
10. मन को वश में रखने से ज्ञान में वृद्धि होती हैं।
11. तप-त्याग आदि करने से ज्ञान की वृद्धि होती हैं।

देवानुप्रिय! ज्ञान प्रागट्य के इन उपायों को जानकर उस पर अमल करने का प्रयास कीजिए। तभी मनुष्य भव सार्थक होगा।

भुख से कम खाकर अभ्यास करने से

पांचों इंद्रियों को (कान, आँख, नाक, जीभ एवं स्पर्श) control में रखने से

उपकारी गुरु का विनय करने से

सीखे हुए ज्ञान को बार-बार याद करने से

खंड - 4

धर्म और विज्ञान खंड

अधिकांश लोग यह समझते हैं कि धर्म और विज्ञान का कोई संबंध नहीं हैं क्योंकि... धर्म आस्था का विषय हैं, जब कि विज्ञान निश्चित परिणामों का विषय हैं। परन्तु धर्म के सार को विस्तार से समझने पर यह स्पष्ट होता हैं कि धर्म में विज्ञान हैं और विज्ञान में धर्म भी आंशिक रूप से सम्मिलित हैं।

विज्ञान में जिस प्रकार विशिष्ट कर्म से विशिष्ट फल की प्राप्ति होती हैं, उसी प्रकार जैन दर्शन के अनुसार विशिष्ट कर्म से विशिष्ट फल की प्राप्ति होती हैं।
कैसे? चलो जानते हैं...

1. धर्म बताता है कि - व्यक्ति को कौन-सा खाना खाना चाहिए? कब और कितना खाना चाहिए। इतना ही नहीं... बल्कि किन दो पदार्थों का एक साथ सेवन नहीं करना चाहिए ताकि रोग न हो आदि... शरीर और आहार का ज्ञान कराता हैं।

शरीर विज्ञान जानने वाले विशेषज्ञों का कहना हैं कि मानव शरीर में ही शरीर को ठीक करने की क्षमता होती हैं। शरीर को सही समय पर, सही मात्रा में भोजन देने से शरीर को पोषण मिलता हैं और शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती हैं।

2. धर्म बताता है कि - सभी जीवों के प्रति दया, मित्रता और क्षमा को सर्वाधिक महत्व देता हैं। जिस कारण मन प्रसन्न रहता हैं। जहाँ मन प्रसन्न होता हैं, वहाँ तन स्वस्थ रहता हैं। यह कई बीमारियों से बचने का उपाय हैं।

मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि मानव मन में क्रोध, घृणा, लोभ जैसी नकारात्मक भावनाएँ उन्हें चिंता, हताशा, depression और अंत में पाप की ओर धकेलती हैं और यह भी कहते है कि स्वस्थ मन का अर्थ हैं, स्वस्थ शरीर।

3. धर्म बताता है कि - मनुष्य को अपने समय, योग्यता और पूँजी का निवेश इस प्रकार करना चाहिए कि उसका लाभ क्षणिक न होकर भवोभव मिल सकें। ऐसे

पुण्यबंध की सही समझ हमें धर्म से मिलती हैं।

अर्थशास्त्री भी यही सलाह देते है कि, जहाँ रिटर्न न हो वहाँ निवेश करना नुकसान हैं।

4. जैन आगमों में दस प्रकार की समाचारी का उल्लेख हैं। समाचारी सम्यक् व्यावहारिकता के बारे में शिक्षित करती हैं। उसके फलस्वरूप, कुल-गच्छ, परिवार-संघ-समाज में शांति एवं समाधि का वातावरण निर्मित होता हैं।

सामाजिक विज्ञान में भी यह कहा गया हैं कि, जिस परिवार-समाज में लोग आपस में मिलजुल कर रहते हैं, परस्पर एक-दूसरे के बारे में सोचते हैं और एक-दूसरे की राय पर विचार करके निर्णय लेते हैं। उस परिवार-समाज को सुख-शांति और समृद्धि प्राप्त होती हैं।

धर्म और विज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता हैं कि...

भले ही विज्ञान लगातार नई खोजों के माध्यम से मानव जीवन को अधिक से अधिक आरामदायक बनाने के नए तरीके खोजने में लगा हुआ हैं, लेकिन धर्म में श्रेष्ठ ज्ञान हैं। वह जानता हैं कि जीव को बाह्य साधनों से सुख नहीं, केवल सहुलियत मिलती हैं। कोई भी आत्मा परमानंद तभी प्राप्त करेगी, जब वह समझ से संतुष्ट होगी।

विश्वभूति राजकुमार

भगवान महावीर की आत्मा ने पहले नयसार के भव में समकित को प्राप्त किया और तीसरे मरीचि के भव में, उत्सूत्र प्ररूपणा करके समकित का वमन किया। उसके बाद प्रभु की आत्मा ने क्रमशः देवलोक और ब्राह्मण के भव धारण कर 16वें भव में राजगृह नगर में राजा विश्वानंदी के छोटे भाई की पत्नी युवराज्ञी धारिणी के पुत्र के रूप में जन्म लिया। उनका नाम विश्वभूति रखा गया।

एक बार यौवन वय को प्राप्त विश्वभूति, पुष्पकरंडक नामक उद्यान में अंतःपुर के साथ क्रिडा करने गए। वे उद्यान में रहकर क्रिडा में लिन रहने लगे। राजकुमार विशाखानंदी भी उस दरम्यान उद्यान के समीप आए। वे पुरे परिवार के साथ कुछ समय उस उद्यान में रहना चाहते थे। विश्वभूति का परिवार उद्यान के अंदर होने के कारण उनको बाहर रहना पड़ा। उस समय राजपरिवार का नियम था की कोई एक परिवार उद्यान के भीतर हैं तब दुसरा परिवार भितर नहीं जाएगा।

फूल चुनने आयी हुई दासी ने उद्यान के अंदर विश्वभूति को और उद्यान के बाहर राजकुंवर को देखा। दासी राजमहल में आई और राजमाता प्रियंगुरानी को उकसाया, 'तुम राजरानी, फिर भी तुम्हारे बेटे को उद्यान में प्रवेश न मिले, यह कैसा हैं? विशाखानंदी को राजकुमार होने का क्या फायदा? धारीणीदेवी तो युवराज्ञी हैं, फिर भी उसका बेटा मज़े कर रहा हैं। सचमूच वह परिवार ही राज्यसुख भुगत रहा हैं'।

दासी की उकसाने वाली बातों से व्यथित होकर प्रियंगुरानी दुखी होकर कोपगृह में बैठ गई। रानी के क्रोध को दूर करने और उसकी इच्छा पूरी करने के लिए राजा ने रणभेरी बजवाई। रणभेरी की आवाज सुनकर विश्वभूति उद्यान से निकलकर शीघ्रता से राज्यसभा में आए। युद्ध की घोषणा होने पर क्षत्रिय जिस कार्य में लगे होते हैं, उसे बिना पूरा किए तुरंत ही निकल पडते हैं।

जब विश्वभूति राज्य सभा में आए तो राजा ने कहा, "पुरुषसिंह नाम का एक सामंत राजा उद्धत बन गया हैं, मुझे उसका दमन करने के लिए सेना के साथ जाना होगा"। उस समय बुजुर्ग पिता को युद्ध में न जाने देकर स्वयं विश्वभूति सेना लेकर

निकल पड़े। वहाँ जाकर देखा तो पुरुषसिंह सामंत आज्ञा में ही था, वे लौट आए। राजा की अकारण भेजने की नीति विश्वभूति को समझ में नहीं आई।

युद्ध से लौटते समय रास्ते में पुष्पकरंडक उद्यान आया। विश्वभूति उस में प्रवेश करने गए, लेकिन द्वारपाल ने उन्हें मना कर दिया। 'आप प्रवेश नहीं कर पाएंगे क्योंकि विशाखानंदी पूरे परिवार के साथ अंदर हैं'। यह सुनकर विश्वभूति को राजा के छल का एहसास हुआ। "राजा ने मुझे उद्यान से बाहर निकालने के लिए झूठे युद्ध की घोषणा की और अपने बेटे विशाखानंदी को उद्यान में जाने देने के लिए कपट पूर्वक मुझे बाहर निकाल दिया"।

कपट करना... धोखा देना बहुत पापकारी कार्य हैं। यह सामने जाकर नहीं लेकिन पीठ के पीछे वार करने बराबर हैं। जिस के साथ धोखा होता हैं, वह बहुत दुखी होता हैं। धोखेबाज व्यक्ति तिर्यंच योनि में जन्म लेता हैं और उसके एक नहीं अनेक जन्म दुर्गति में व्यतीत होते हैं।

राजा के विश्वासघात से क्रोधित होकर, विश्वभूति ने पास के एक कोठे के पेड़ पर अपनी मुट्ठी से प्रहार किया। एक ही झटके में पेड़ के सारे फल नीचे गिर गए। विश्वभूति ने इसे दिखाते हुए द्वारपाल से कहा, "मेरी इस शक्ति को देखों। मैं बुजुर्ग पिताश्री के आदर के कारण किसी को नहीं मारता, नहीं तो तुम सबके सिर इस कोठे के फल की तरह जमीन पर गिरा देता। विशाखानंदी को मेरे इस बल से माहित कर देना", इस प्रकार द्वारपाल को बताकर विश्वभूति वहाँ से निकल गए।

"मुझे ऐसे कपटपूर्ण भोग की आवश्यकता नहीं हैं", ऐसा फैसला किया और सीधे संभूतिमुनि के पास गए, दीक्षा स्वीकार की और गुरु के साथ विचरण करने लगे। निरंतर अभ्यास में लिन विश्वभूतिमुनि गीतार्थ बन गए। गीतार्थ विश्वभूतिमुनि गुरु की आज्ञा से अकेले विचरण करने लगे।

एक बार मुनि मथुरा नगरी में पहुँचे। तपस्या के कारण उनका शरीर क्षीण हो गया था। विश्वभूतिमुनि मासक्षमण के पारणा हेतु गौचरी (भोजन) के लिए नगर गए। रास्ते में एक गाय ने उन्हें धक्का दे दिया और मुनि नीचे गिर पड़े। यह द्रश्य विशाखानंदी ने देखा। वे मथुरा की राजकुमारी से विवाह करने मथुरा आए थे। वह खिड़की में खड़े होकर शहर को देख रहे थे। मुनि को वहाँ गिरते देख उन्हों ने उपहास किया कि, "कोठे के फल को गिरा देने की तुम्हारी शक्ति कहाँ चली गई? एक साधारण गाय से गिर गए।"

उपहास के इन शब्दों को सुनकर विश्वभूतिमुनि का अंदर दबाया हुआ क्रोध भड़क उठा। क्रोध और अभिमान एकत्र होने से मुनि ने गाय को उसके सींगों से पकड़कर आकाश में गोल करके फेंक दिया। तत् पश्चात उन्होंने नियाणा (संकल्प) किया (संयम और तपस्या का फल मांग लिया) कि, "मैं अपने संयम और तपस्या के प्रभाव से भवांतर में इस विशाखानंदी का संहार करने वाला बनुं"।

इस पाप की आलोचना किए बिना, संयम का पालन करते करते पूर्व कोटी का आयुष्य समाप्त किया। तत् पश्चात सप्तम देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर वे नियाणा के प्रभाव से त्रिपृष्ठ वासुदेव के रूप में उत्पन्न हुए।

सीख (मोरल) :

देवानुप्रिय! भगवान के इस भव को जानकर हमें क्या सोचना हैं और क्या करना हैं!

कभी किसी से ईर्ष्या न करें और चुगली न करें। ऐसी आदत दो लोगों या दो परिवारों के बीच मनमुटाव पैदा करती हैं। जैसे नौकरानी की बात सुनने से प्रियंगुरानी के भीतर में ईर्ष्या पैदा हुई और परिणाम स्वरूप विशाखानंदी और विश्वभूति, दो भाइयों के बीच झगड़ा शुरू हो गया। उस प्रतिशोध की परंपरा कई भवों तक जारी रही।

अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए कभी भी छल कपट ना करें। जैसे राजा विश्वनंदी ने अपने पुत्र विशाखानंदी को उद्यान में भेजने के लिए अपने भतीजे विश्वभूति के साथ साजिश रची और उसे युद्ध के लिए बुलाया। परिणाम स्वरूप विश्वभूति के क्रोध का उदय हुआ। एक व्यक्ति का छल दूसरें व्यक्ति के कषाय को प्रज्वलित करता हैं।

कषाय मात्र आत्मा के सबसे बड़े शत्रु हैं। विशाखानंदी का अहंकारयुक्त उपहास और विश्वभूति का अहंकारयुक्त क्रोध, दोनों ही आत्मा को अनेक भवों में परिभ्रमण करवाते हैं...

हमें जो मिला हैं, उसी में संतोष करना चाहिए। किसी से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए और क्रोध, छल, अहंकार आदि को सदैव वश में रखना चाहिए।

नेम राजुल

बाईस वें तीर्थंकर श्री नेमनाथ भगवान शौर्यपुर नगर के समृद्धिवान समुद्रविजय राजा के महायशस्वी, बलवान, प्रतिभाशाली पुत्र थे। उनकी माता शिवादेवी और छोटा भाई रहनेमि था।

समुद्रविजय राजा के स्वयं से छोटे 9 अन्य भाई थे, उन में से सबसे छोटे भाई का नाम वसुदेव था। वसुदेव राजा की दो पत्नियाँ थी। इनमें रोहणी के पुत्र बलदेव और देवकी के पुत्र श्री कृष्ण वासुदेव थे। इस प्रकार श्रीकृष्ण और नेमनाथ दोनों चचेरे भाई थे।

एक बार नेमकुमार ने वासुदेव का पंचजन्य शंख बजाया। प्रजा और स्वयं श्रीकृष्ण इस विचार में पड़ गए कि यह शंख किसने बजाया? इस शंख को श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कोई नहीं उठा सकता था, इसलिए इसे फूंकने का तो प्रश्न ही नहीं उठता? लेकिन शंख रक्षक ने समाचार दिया कि यह नेमकुमार ही थे, जिन्हों ने शंख बजाया था! नेमकुमार के लिए यह सिर्फ एक खेल जैसा था, क्योंकि वे तिर्थंकर थे। इससे नेमनाथ के पराक्रम की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। वे जितने खूबसूरत थे, उतने ही मजबूत थे।

श्रीकृष्ण को शंका हुई कि," नेमकुमार इतने शक्तिशाली हैं, कहीं राजा न बन जाए। नेमकुमार अभी कुँवारे है। यदि वे विवाहित हो जाए, तो उनकी शक्ति कम हो जाएगी।" विषयों के भोग से हमेशां शक्ति का क्षय होता हैं।

युवा नेमकुमार संसार में वैराग्य से रहते थे। उनके माता-पिता उनकी शादी करने के लिए बहुत उत्सुक थे। श्रीकृष्ण वासुदेव ने नेमकुमार का विवाह शौर्यपुर नगर में ही रहने वाले उग्रसेन राजा की कुमारी राजेमती (राजुल) से तय किया।

राजेमती के सौंदर्य का वर्णन करते करते सरस्वती भी थक जाए। राजेमती स्त्रीयों के सभी शुभ लक्षणों से संपन्न, सुंदर द्रष्टिवाली, उत्तम जीवन जीने वाली, धार्मिक संस्कारों से संपन्न कन्या थी।

विवाह के लिए शुभ मुहूर्त देखा गया और वह दिन भी आ गया। शौर्यपुर नगर में खुशी का माहौल था। नेमकुमार के साथ विवाह की बारात आगे बढने लगी।

रथ पर सवार नेमकुमार बहुत ही सुंदर दिख रहे थे। बारात महल के पास पहुँची। राजेमती सोलह सिंगार का साज सजे बैठी थी।

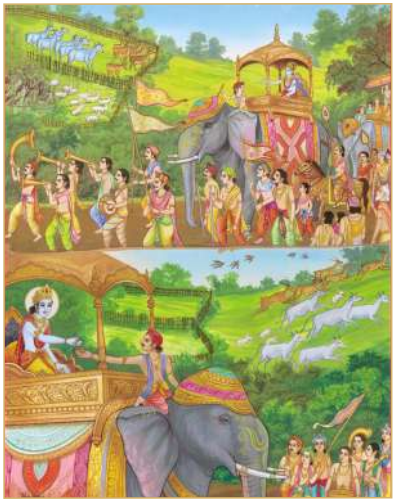

शादी के मंडप में पहुँचने पर नेमकुमार ने बाड़े में बंधे पशु और पिंजरों में बंध पक्षियों को देखा। नेमकुमार ने अपने सारथि से पूछा, "इन सभी पशु-पक्षियों को यहाँ क्यों लाया गया हैं?" सारथि ने कहा "वे मांस भक्षण करने वाले बारातियों के लिए यहाँ लाए गए हैं" नेमकुमार ने सोचा कि, "यह मेरे लिए सही नहीं हैं कि मेरे विवाह के अवसर पर इतने सारे जीवों की हिंसा हो। ऐसे निर्दोष प्राणियों की हिंसा मेरे वर्तमान और भविष्य के लिए हानिकारक और अकल्याणकारी होगी।" उन्होंने अपने सारथि द्वारा रथ को रोक दिया और सभी पशु-पक्षियों को मुक्त कराया। पशु-पक्षियों का मुक्ति का आनंद देखकर नेमकुमार सोचने लगे कि... 'मेरी शक्ति का उपयोग आत्मकल्याण के लिए किया जाए। संसार की पापमय प्रवृतियों को छोड़कर मैं दीक्षा लेकर आत्मसाधना में लगुं, वही सबसे परम हितकारी हैं।'

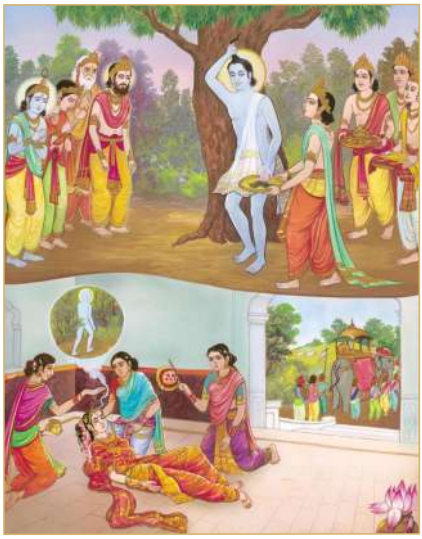

ऐसा विचार कर उन्होंने सारथि से कहा कि, रथ को वापस अपने नगर की ओर मोड़ दो। नेमकुमार ने राजुल को छोड़ दिया और शिवरमणी को वरने के लिए तैयार हो गए।

अचानक नेमकुमार का रथ पीछे मुड़ा और रंग में भंग पड गया। राजुल और उसकी सखियाँ सोचने लगी की 'क्या हुआ?' कहा गया कि, 'नेमकुमार ने पशुओं की पुकार सुनी और उन्हें पिंजरे से छुड़ाकर वापिस लौट गए, अब वे इस असार संसार में शादी

के बंधन से जुडना नहीं चाहते।'

यह खबर सुनकर राजुल अत्यंत शोकग्रस्त हो गई। वह सोचने लगी, "धिक्कार हैं मुझे कि मैं नेमकुमार द्वारा त्याग दी गई! लेकिन मुझे इस भव में दूसरा वर नहीं चाहिए। अब मेरे लिए भी यही उत्तम हैं कि, मैं उनके पदचिन्हों पर चलकर दीक्षा लूं।" ऐसा विचार कर वे कुँवारे ही रहे और उचित समय पर दीक्षा लेने के लिए तत्पर हुए।

नेमकुमार ने एक वर्ष तक वरसीदान दिया और बाद में 1000 राजाओं के साथ दीक्षा ली। संयम स्वीकार करने के बाद, वे द्वारका नगर के पास रैवतक (गिरनार) पर्वत पर साधना में लीन हो गए। 54 दिनों की साधना के बाद उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। वे साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका इन चार तीर्थों की स्थापना करके तीर्थंकर बने।

इस बीच... राजुल ने भी उनकी राह को स्वीकार किया और भगवान नेमनाथ से दीक्षा ग्रहण की।

एक बार राजुल साध्वी कई साध्वीजी के साथ भगवान नेमनाथ के दर्शन करने के लिए गिरनार पर्वत पर गई। तभी अचानक बारिश आ गई और वे साथी साध्वीजी से बीछड गए। गिलें कपड़ों को सुखा करने के लिए उन्होंने एक गुफा में आश्रय लिया और वहाँ अपने कपड़ों को सुखाने के लिए रखा।

संयोगवश उसी गुफा में नेमनाथ के छोटे भाई रहनेमि मुनि ध्यान में बैठे थे। गुफा में अँधेरा होने के कारण साध्वी राजुल उन्हें नहीं देख सकीं, लेकिन रहनेमि ने राजेमती के रूप की सुंदरता पर मुग्ध होकर कहा, "राजेमती! आप अपनी जवानी क्यों बर्बाद कर रहे हो? मनुष्य भव मिलना बहुत दुर्लभ हैं, इसलिए पहले हम इन भोगो का आनंद लेते हैं, फिर जिनेन्द्र भगवान के मार्ग का अनुसरण करेंगे"।

राजेमती साध्वी अपने व्रतों और नियमों के पालन में द्रढ़ थी। शील की रक्षा करते हुए उसने उत्तर दिया, "यदि आप देवता या इंद्र के समान हो, फिर भी मैं तुम्हें नहीं चाहती। आप नेमनाथ भगवान के छोटे भाई हैं और मैं उनके द्वारा परित्याग की गई राजेमती हूँ। आप अपने भाई के द्वारा किए गए वमन को क्यों भुगतना चाहते हो? आप को धिक्कार हैं कि आप असंयम रुप जीवन जीना चाहते हैं! आपके लिए इससे तो मृत्यु ही अच्छी हैं।

हे रहनेमि, हमारे दोनों का कुल, परिवार श्रेष्ठ हैं। हमें ऐसा सोचना भी शोभा नहीं देता! यह शरीर मल, मूत्र और दुर्गंध से भरा हैं। हम संत बने हैं, आत्मवैभव प्राप्त करने के लिए। मुनिराज! आपके पवित्र मन में इतना जहरीला विचार और वचन कहाँ से आ गए? आप संयम में स्थिर बनिए।"

राजेमती के ऐसे मर्म भेदी वचनों से रहनेमि की आँखें खुल गई। वे पतन के मार्ग पर जाने से बचें। लज्जापूर्वक, अंतर के भाव से अपनी गलती के लिए उन्होंने साध्वी राजेमती से माफी मांगी। राजेमती का उपकार मानते हुए बोले, "धन्य हो आप! आपने मुझे सही रास्ते का मार्गदर्शन कर बचा लिया।" रहनेमि भगवान के पास गए, आलोचना की। एक वर्ष के बाद, उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त किया।

संयम, तपस्या और त्याग के माध्यम से एक आदर्श जीवन जीकर साध्वी राजेमती ने मोक्ष प्राप्त किया।

अनेक जीवों को प्रतिबोधित करके, अनेक जीवों का उद्धार करके भगवान नेमनाथ भी रैवतगिरि पर्वत से निर्वाण को प्राप्त हुए।

सीख (moral):

देवानुप्रिय, नेमानाथ भगवान और सती राजेमती का नव नव भव का ऋणानुबंध था। आपस में प्रेम था। इस संसार यात्रा में, अनंत प्राणियों की अनंत प्राणियों से प्रीति हो जाती हैं, लेकिन अंत में वह संसार सागर से बचाने वाली नहीं बल्कि डूबाने वाली बन जाती हैं।

हमें इस सत्य कथा से यही सीख लेनी हैं कि, मुझे भी अपने ऋणानुबंधी पात्र से वैसी ही प्रीति करनी चाहिए, जो मुझे संसार सागर से तार ले।

जैसी द्रष्टि वैसी सृष्टि

देवानुप्रियो! महाभारत के युद्ध के बारे में तो आप सभी जानते ही होंगे। सही..! लेकिन आज हम उस युद्ध के समय की एक दिलचस्प कहानी समझने जा रहे हैं।

एक बार श्री कृष्ण वासुदेव को महाभारत युद्ध से पहले कौरवों के सबसे बड़े भाई दुर्योधन और पांडवों के सबसे बड़े भाई युधिष्ठिर की परीक्षा लेने का मन हुआ।

उन्होंने उन दोनों को बुलाया और दुर्योधन से कहा, "आप पूरे शहर में से एक अच्छा आदमी ढूंढ कर लाओ।"

और युधिष्ठिर से कहा, "आप पूरे शहर में सें एक दुष्ट आदमी ढूंढ कर लाओ।"

दोनों शहर में चल दिए। दुर्योधन पूरे शहर में एक अच्छे आदमी की तलाश करने लगा लेकिन उसे हर आदमी में कोई न कोई दोष नजर आया।

एक व्यक्ति जबतक भगवान नहीं बन जाती, तबतक उसके भीतर अच्छे और बुरे दोनों गुण होतो हैं। यह हम पर निर्भर करता हैं कि हम उस में क्या देखते हैं?

दोनों भाई पूरे शहर में घूमे। दुर्योधन को एक भी अच्छा आदमी नहीं मिला। उधर युधिष्ठिर सारे नगर में बुरे लोगों को ढूंढते थे पर उन्हें एक भी बुरा व्यक्ति नजर नहीं आया, उन्हें सभी में अच्छाई नजर आई।

हमें अपने आप को देखना हैं कि हम किसी दूसरे में अवगुण देखते हैं या गुण? जो स्वयं अच्छा होता हैं उसे हमेशा दूसरे अच्छे महसूस होते हैं। जिसके अपने में दोष होते हैं, वे दूसरों में दोष देखते हैं।

शाम को दोनों श्रीकृष्ण के पास आए और अपना अपना उत्तर दिया।

श्रीकृष्ण महाराज समझ गए कि, जैसी अपनी द्रष्टि हो, वैसी ही सृष्टि दिखाई पड़ती हैं।

आइए अब जानते हैं श्रीकृष्ण वासुदेव की आगम में आनेवाली गुणग्राहकता वाली द्रष्टि का एक प्रसंग...

एक बार श्रीकृष्ण वासुदेव अपनी चतुरंगी सेना के साथ जा रहे थे। सड़क पर एक कुत्ती थी जिसके कान सड़े हुए थे, कान में कीडे पड गए थे। उसके शरीर से असहनीय गंध आ रही थी। उधर से गुजरने वाले लोग बदबू से बचने के लिए नाक के सामने कपड़ा रख लेते थें लेकिन इतना होते हुए भी श्रीकृष्ण वासुदेव की द्रष्टी ने कुत्ती के सफेद दांतों को अनार की कलियों की तरह देखा और उनकी प्रशंसा सबसे की।

जिस की जैसी द्रष्टि, उसे वैसा ही दिखता हैं। गुणग्राही द्रष्टि वाले को सभी के अंदर गुण ही दिखाई देते हैं। कुत्ती के कान सड़े हुए थे। उसके कानों में कीड़े पडे थे। उसके शरीर से असहनीय दुर्गंध आ रही थी। इन सबके बावजूद कृष्ण वासुदेव की द्रष्टि कुत्ती के सफेद दांतों पर गई और उसकी प्रशंसा की। यह प्रसंग श्री कृष्ण वासुदेव की गुणग्राही द्रष्टि को प्रगट करता हैं।

इन दोनों कहानियों से हमें क्या समझना हैं?

सीख (moral):

यदि हम अच्छे हैं तो दुनिया अच्छी लगती हैं, यदि हम बुरे हैं तो दुनिया बुरी लगती हैं। हमें हमेशा सभी के गुण देखना हैं।

परमात्मा कहते हैं कि, यदि हमें किसी व्यक्ति के प्रति नकारात्मकता हो तो भी उसके अच्छे गुणों को ढुंढो और गुणों को ही देखो। हमारे भीतर की नकारात्मकता दूर हो जाएगी।

एक अच्छा इंसान हमेशा स्वंय भी खुश रहता हैं और दूसरों को भी खुश कर सकता हैं। आखिर महाभारत का युद्ध किसने जीता?

विजय हुई सद्गुणी युधिष्ठिर की...

सद्गुणी सदैव सुख-शाता देता हैं और सुख-शाता पाता हैं।

रत्नाकर पच्चीसी

मंदिर छो मुक्ति तणा, मांगल्य क्रिडाना प्रभु!
ने इंद्र नर ने देवता, सेवा करे तारी विभु !
सर्वज्ञ छो स्वामी वळी, शिरदार अतिशय सर्वना,
घणुं जीव तुं, घणुं जीव तुं, भंडार ज्ञान कळा तणा. (1)

त्रण जगतना आधार ने, अवतार हे करुणा तणा,
वळी वैद्य हे! दुर्वार आ, संसारना दुःखो तणा,
वीतराग वल्लभ विश्वना, तुज पास अरजी उच्चरूं,
जाणो छतां पण कही अने, आ हृदय हुँ खाली करुं. (2)

शुं बाळको मा-बाप पासे, बाळक्रीडा नव करे,
ने मुखमांथी जेम आवे, तेम शुं नव उच्चरे!
तेमज तमारी पास तारक! आज भोळा भावथी,
जेवुं बन्युं तेवुं कहुं, तेमां कशुं खोटुं नथी। (3)

में दान तो दीधुं नहीं ने, शियळ पण पाळ्युं नहीं,
तपथी दमी काया नहीं, शुभभाव पण भाव्यो नहीं,
ए चार भेदे धर्ममांथी, कांई पण प्रभु! नव कर्युं,
मारुं भ्रमण भवसागरे, निष्फळ गयुं निष्फळ गयुं (4)

हुँ क्रोध अग्निथी बळ्यो, वळी लोभ सर्प डस्यो मने,
गळ्यो मानरुपी अजगरे, हुँ केम करी ध्यावुं तने?
मन मारुं मायाजाळमां, मोहन! महा मुंझाय छे,
चडी चार चोरो हाथमां, चेतन घणो चगदाय छे। (5)

में परभवे के आ भवे पण, हित कांई कर्युं नहीं
तेथी करी संसारमां सुख, अल्प पण पाम्यो नहीं,
जन्मो अमारा जिनजी! भव पूर्ण करवाने थया,
आवेल बाजी हाथमां, अज्ञानथी हारी गया। (6)

अमृत झरे तुज मुखरूपी, चंद्रथी तो पण प्रभु!
भींजाय नहीं मुज मन अरेरे! शुं करुं हुँ तो विभु?
पथ्थर थकी पण कठण, मारुं मन खरे क्यांथी द्रवे?
मर्कट समा आ मन थकी, हुँ तो प्रभु हार्यो हवे। (7)

भमतां महाभव सागरे, पाम्यो पसाये आपना,
जे ज्ञान दर्शन चरणरूपी, रत्नत्रय दुष्कर घणां,
ते पण गया प्रमादना वशथी, प्रभु! कहुं छुं खरुं,
कोनी कने किरतार! आ पोकार हुं जईने करुं? (8)

ठगवा विभु आ विश्वने, वैराग्यना रंगो धर्यां,
ने धर्मना उपदेश, रंजन लोकने करवा कर्यां,
विद्या भण्यो हुँ वाद माटे, केटली कथनी कहुँ?
साधु थईने बहारथी, दांभिक अंदरथी रहुँ। (9)

में मुखने मेलुं कर्युं, दोषो पराया गाईने,
ने नेत्रने निंदित कर्या, परनारीमां लपेटाईने,
वळी चित्तने दोषित कर्युं, चिंतवी नठारुं परतणुं,
हे नाथ! मारुं शुं थशे ? चालाक थइ चूक्यो घणुं। (10)

करे काळजाने कतल पीडा, कामनी बिहामणी,
ए विषयमां बनी अंध, हूँ विडंबना पाम्यो घणी,
ते पण प्रकाश्युं आज लावी, लाज आप तणी कने,
जाणो सहुं तेथी कहुँ, कर माफ मारा वांकने। (11)

नवकार मंत्र विनाश कीधो, अन्य मंत्रो जाणीने,
कुशास्त्रनां वाक्यो वडे, हणी आगमोनी वाणीने,
कुदेवनी संगत थकी, कर्मो नकामा आचर्या,
मति भ्रमथी रत्नों गुमावी, काच कटका में ग्रह्या। (12)

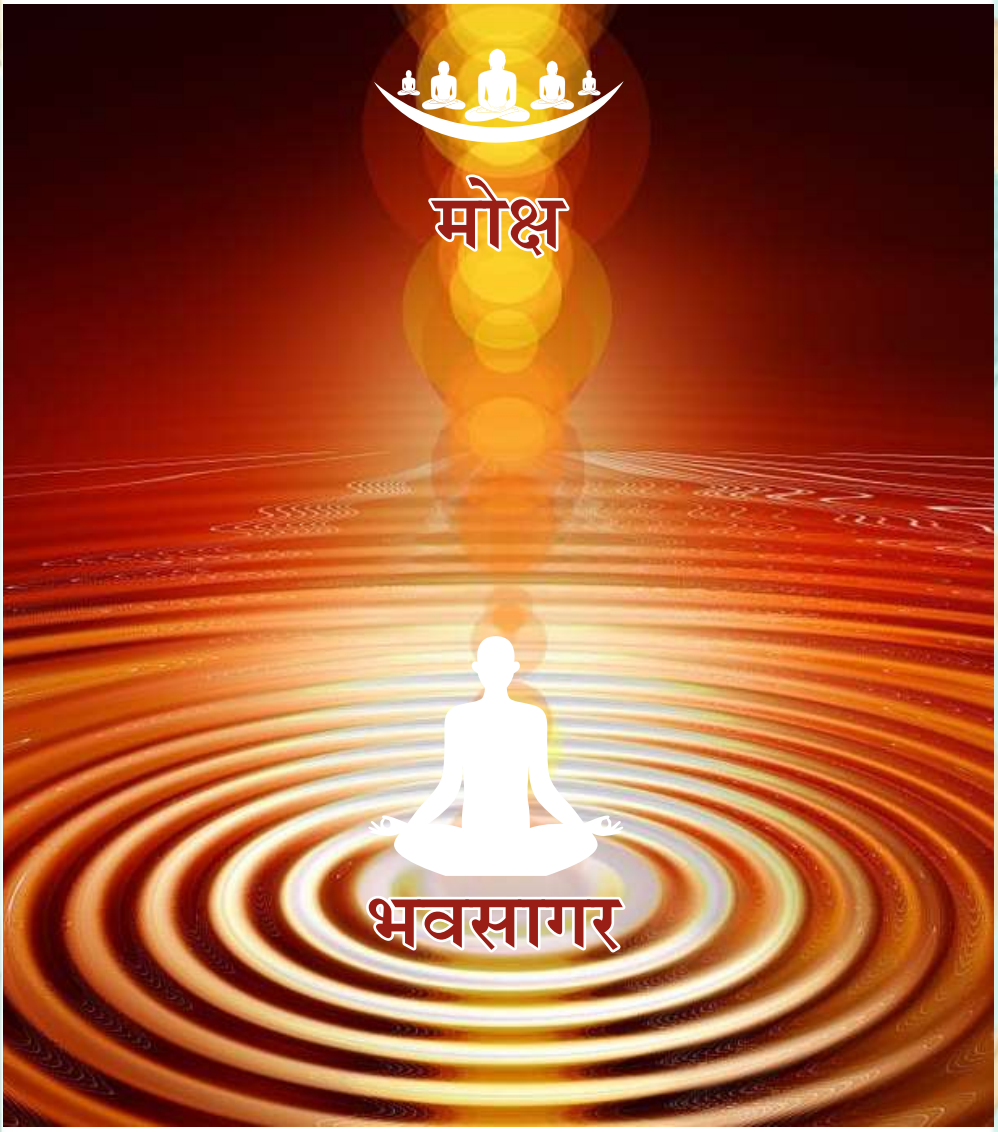

प्रतिक्रमण भावना

(राग ... मेरा जीवन कोरा कागज)

पाप कर्मों से पीछे हटना, प्रतिक्रमण कहलाय (2)
सुबह शाम... (2) भाव से कीजिए, आवश्यक सुखदाय...पाप ..

रात-दिन के कार्य करते, होती कर्मों की आय (2)
पापो की शुद्धि करनेवाली, यह पावन गंगा कहलाय (2)
व्रत नियम में... (2) छिद्र पड़े वे प्रतिक्रमण से भर जाय... (2)

रोज रोज प्रतिक्रमण से, संस्कार आतम पर पड जाय (2)
अन्य भव में यह संस्कार, पुनः प्रगट हो जाय (2)
स्वयं तीरे... (2) अन्य को तारे, तारक वे कहलाय...पाप...

अवश्य करना चाहिए जिसे, वह आवश्यक कहलाय (2)
करते करते किसी समय, भाव विशुद्ध हो जाय (2)
ऐसे जीव को... (2) धर्म प्राप्ति सुलभ बन जाय...पाप...

भावसे करें प्रतिक्रमण तो, कोटी कर्म कट जाए (2)
उत्कृष्ट रस जो आ जावे.. जिन नाम कर्म बंध जाय (2)
भवसागर को... (2) पार करें वे, सिद्ध बुद्ध बन जाए ...पाप...

प्रतिक्रमण की पावन गंगा

वाणी विवेक

(राग.. ऐ मालिक तेरे बंदे हम)

हे भंते! आपकी आज्ञा पाले हम
वाणी का विवेक रखें हरदम
हित हम बोले, मित हम बोले,
परीमित सदा बोले हम.... हे भंते ....

कभी असत्य ना बोलेंगे,
कठोर भाषा से दूर रहेंगे,
जरूर हो तो बोलेंगे, नहीं तो मौन रखेंगे,
वचन महत्व समझेंगे हम... हे भंते ...

कां कां करता कौआ, किसी को ना भाएँ..
गुंजन करती कोयल, सभी का प्यार पाए...
कर्कश ना बोलेंगे, मधुरता बरसायेंगे....
वाणी विवेक रखेंगे हम .... हे भंते...

अनंत पुण्यराशी की सुबह खीली
अनंत जीवों को नहीं, जो हमें मिली
सद् उपयोग वाणी का करेंगे, सबको शाता पहुँचाएँगे
यही जीवनमंत्र बनाएँगे हम.... हे भंते ...

बडे बुझुर्गो को सम्मान देगें,
मित्रों से विवाद कभी ना करेंगे...
गुरुजनों के साथ, विनयपूर्वक बोलेंगे
आज्ञा को तहत्ति कह स्वीकारेंगे हम ... हे भंते...

।।श्री महावीराय नमः।। ।।श्री वितरागाय नमः।। ।।श्री नमो नाणस्सः।।

श्री ग्रेटर बॉम्बे वर्धमान स्थानकवासी जैन महासंघ

Shree Greater Bombay Vardhman Sthanakvasi Jain Mahasangh

: प्रबंधित :

मातुश्री मणिबेन मणशी भीमशी छाडवा धार्मिक शिक्षण बोर्ड

Matushree Maniben Manshi Bhimshi Chhadva- Dharmik Shikshan Board,

Jayant Arcade, office No 202, 2nd floor,
M.G. Road, Rajawadi Signal, Ghatkopar (E), Mumbai- 400077

E-mail: jainshikshanboard@gmail.com **Website: www.jaineducationboard.org**

Our Website

- Contact Details of Shikshan Board office (Phone & Email)
- News and events related to examination and breaking news
- Know Goals and Visions of Board
- Facility to enroll for forthcoming exam online
- Historical exams and answer papers available from 2016
- Download online shreni books
- Schedule of forthcoming Shreni exams available
- Access Photographs of various events
- View Past exams results

हमारी वेबसाइटसे

- शिक्षण बोर्ड कार्यालय के संपर्क विवरण (फोन और इमेल)
- परीक्षा और ब्रेकिंग न्यूज से संबंधित समाचार और कार्यक्रम।
- बोर्ड के लक्ष्यों और द्रष्टिकोणों को जानें।
- आगामी परीक्षा में आँनलाइन नामांकन करने की सुविधा।
- 2016 से परीक्षा के प्रश्नपेपर्स और उत्तर पत्र उपलब्ध हैं।
- प्रत्येक श्रेणी का पाठयक्रम डाउनलोड किया जा सकता है।
- परीक्षा की जानकारी समय पर मिल सकेगी।
- विविध आयोजनों की तस्वीरें उपलब्ध है।
- भूतकाल में दी गई परीक्षा के परिणाम जान सकेंगे।

कर्मराजा का न्याय

(राग.. टिम टिम करते तारे)

कर्मराजा अनुठे हैं, न्यायतुला लिए बैठे हैं
डरे ना वे किसी से, न्याय करें योग्य रीति से... कर्मराजा...

नॉनवेज खाओंगे तो, नर्क में फेंकेगे
जीवदया पालोंगे तो ,देवलोक में भेजेंगे
माया कपट करोंगे तो, तिर्यंच बनाएँगे
सरलता रखोंगे तो, मानव भव पाओंगे... कर्मराजा...

होगा असत्य आचरण, तो दुर्गति में डालेंगे
सत्य के आचरण से, सुगति में जाएँगे
कषाय यदि किए तो, साँप बिच्छू की योनी पाएँगे
रहेंगे उपशांत, तो मान सम्मान दिलाएँगें... कर्मराजा...

आसक्ति करेंगे तो, स्थावर बनाएँगें
धर्म क्षेत्र जाएँगें तो, ज्ञान बढाएँगें
बडों के सामने बोलेंगे तो, अनाथ जीवन बिताएँगें
रखेंगे जो विनय विवेक, अनंत कृपा बरसाएँगें... कर्मराजा...

गुरुदर्शन करेंगे तो, सच्ची समझ पाएँगे
प्रभु भक्ति में लीन बने तो, पुण्य प्रगटाएँगे
जानेंगे जो सत्य धर्म, संसार वे तिराएँगे
कर्मो से मुक्त करें, मोक्ष दिलाएँगे... कर्मराज़ा...